सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

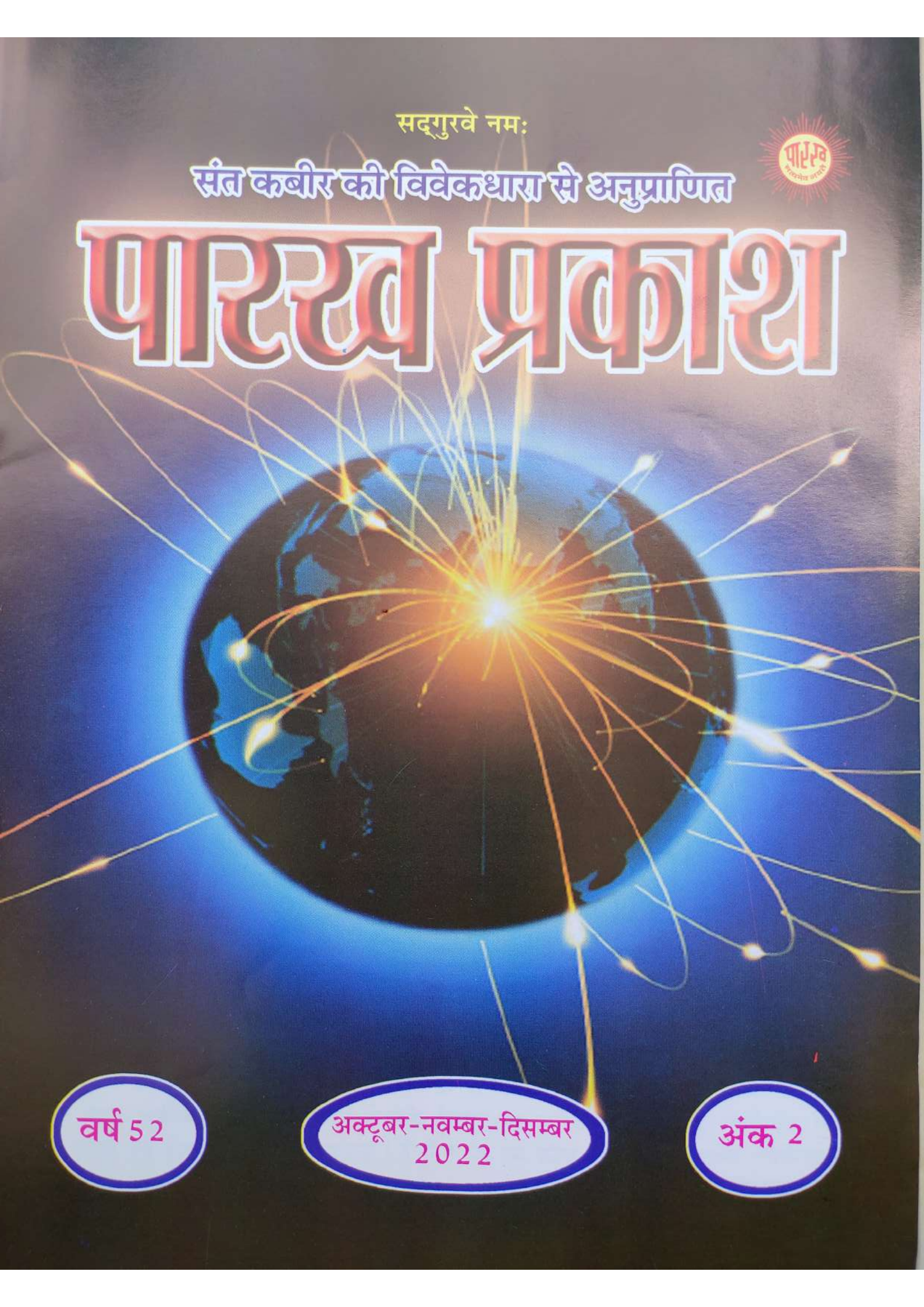

वर्ष 52

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
2022

अंक 2

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
अब मैं भूला रे भाई	सद्गुरु कबीर	1
अब मत बांटो इंसान को	हेमंत हरिलाल साहू	23
आत्मज्ञान परिचय बिना	राधाकृष्ण कुशवाहा	23
निज स्वरूप पहचान लो	श्रीमती मीना जैन	36

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 — व्यवहार वीथी / 10 — परमार्थ पथ / 21

बीज़क चिंतन / 32

लेख

जब अपवित्र विचार घेरते हैं	श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट	6
मन और जीवन	विवेक दास	13
शह भी आपकी, सफलता भी आपकी	श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज	17
मध्यमार्गी बने	श्री भावसिंह हिरवानी	24
लाभदायक ही नहीं प्रसन्नतादायक	श्री सीताराम गुप्ता	25
राम क्यों नहीं मिलता?	धर्मेन्द्र दास	27
कबीर की दृष्टि में श्रमिकों का महत्त्व		41

कहानी

पुजारी का प्रायश्चित	डॉ. अमरनाथ सिंह	37

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास
पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

आवश्यक सूचना

(पारख प्रकाश के शुल्क में वृद्धि)

पारख प्रकाश के सभी पाठकों से निवेदन है कि कागज की कीमत एवं पत्रिका छपाई की लागत में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण इस जुलाई अंक से पारख प्रकाश के वार्षिक शुल्क एवं आजीवन सदस्यता शुल्क में वृद्धि कर दी गयी है। कृपया अपना शुल्क बढ़े हुए शुल्क के अनुसार प्रेषित करें—

एक प्रति : 16 रुपये, वार्षिक शुल्क : 60 रुपये, आजीवन सदस्यता शुल्क : 1600 रुपये

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

श्री निर्मल साहेब कृत
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir
The Path of Salvation

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच
कर्मयोगी कबीर (उपन्यास)

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

व्याख्याकार—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

(प्रथम खण्ड : चौबीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : बाईसवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 325 रु०, द्वितीय खण्ड 325 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये | वार्षिक 60 रुपये | आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

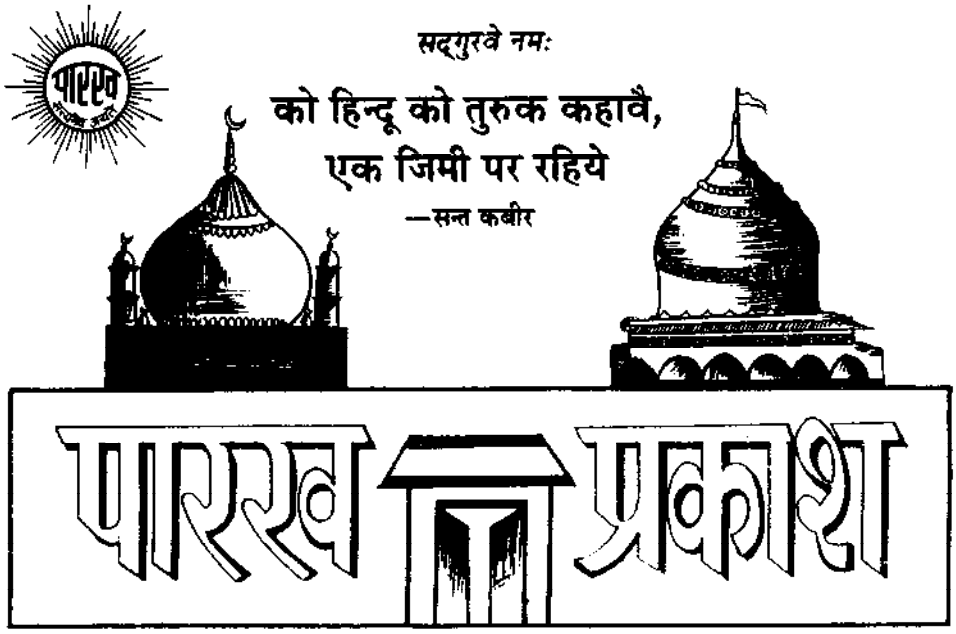

साँचे श्राप न लागै, साँचे काल न खाय।
साँचहि साँचा जो चलै, ताको काह नशाय॥ बीजक, सखी 308॥

वर्ष 52] प्रयागराज, कार्तिक, वि. सं. 2079, अक्टूबर 2022, सत्कबीराब्द 624 [अंक 2

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सद्गुरु जुगत लखाई॥टेक॥
क्रिया कर्म आचार मैं छाँड़ा, छाँड़ा तीरथ नहाना।
सारी दुनिया भई सयानी, मैं ही एक दिवाना॥ 1॥
न हरि रीझें जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझें धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे॥ 2॥
दया राखि धर्म को पाले, जग सो रहे उदासी।
अपना सा जीव सबको जाने, ताहि मिले अविनाशी॥ 7॥
सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छाड़े गर्व गुमाना।
आतमराम ताहि को मिलिहैं, कहैं कबीर सुजाना॥ 9॥

× × ×

कहहु हो अम्मर कासो लागा, चेतनहारा चेत सुभागा॥
अम्मर मध्ये दीसे तारा, एक चेता एक चेतवनहारा॥
जो खोजो सो उहवाँ नाहीं, सो तो आहि अमरपद माहीं॥
कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई॥

पारख प्रकाश

पढ़े सो पण्डित होय

सद्गुरु कबीर की विश्वप्रसिद्ध साखी है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥
पढ़ि पढ़ि के पाथर भया, लिख लिख भई जू ईंट।
ढाई आखर प्रेम की, लगी न अंतर छींट॥

अर्थ स्पष्ट है कि तमाम पोथियों को, शास्त्रों को पढ़-पढ़ कर दुनिया के लोग मर-मर चले गये, परन्तु इन पोथियों को पढ़ने वालों में से कोई पण्डित न बन सका। जो प्रेम को पढ़ता है, जिसके जीवन के सारे कर्म-व्यवहार, आचरण प्रेमपूर्वक होते हैं, वही व्यक्ति पण्डित होता है। बड़ी-बड़ी पोथियों को लिखने और पढ़ने वालों में से अनेक लोग पत्थर और ईंट के समान कठोर हृदय वाले हो गये। पोथियों को लिख-पढ़कर भी उनका हृदय कोमल न हुआ, इसलिए उनके जीवन में प्रेम की छींटे नहीं पड़े और उनका जीवन नीरस-शुष्क का शुष्क ही रह गया।

उक्त दोनों या इनके समान कबीर साहेब की अनेक और साखियों का भाव यह नहीं है कि पोथियों को लिखना-पढ़ना नहीं चाहिए या उनको लिखना-पढ़ना गलत है। जिसमें जैसी क्षमता-योग्यता हो वह ज्यादा से ज्यादा पोथियों को लिखे-पढ़े, परन्तु तमाम पोथियों-शास्त्रों को लिखने-पढ़ने के बाद यदि जीवन में प्रेम का अंकुरण न हुआ, प्रेम प्रस्फुटित न हुआ, जीवन आचरण कोरा का कोरा ही रह गया, तो फिर पोथियों को लिखने-पढ़ने का अर्थ क्या हुआ। यह तो उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार गधा चंदन का बोझा ढोता है परन्तु चंदन का महत्त्व, चंदन की सुगंध से अन्जान ही रह जाता है। इसलिए कहा गया है—

यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्यवेत्ता न तु चंदनस्य।
तथैव विप्राः षट्शास्त्रयुक्ता सद्ज्ञानहीनाः खरवद् वहन्ति॥

अर्थात जैसे गधा चंदन का भार ढोता है, परन्तु उसकी सुगंध से लाभ नहीं ले पाता वैसे ही कोई व्यक्ति है तो छहों (या अनेकों) शास्त्रों का ज्ञाता परन्तु सद्ज्ञान-सद्आचरण के अभाव में वह गधे के समान केवल विद्या-मद का बोझा-भार ढो रहा है।

शास्त्रों या पोथियों को लिख-पढ़ लेना कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है जीवन का आचरण। शास्त्रों-पोथियों को लिखने-पढ़ने वाला विद्वान हो सकता है, पण्डित अर्थात ज्ञानी नहीं। पण्डित अर्थात ज्ञानी तो वह है जिसका जीवन सद्गुण-सदाचारमय है, भले ही वह शास्त्रों का ज्ञाता न हो। यही बात महाभारत में युधिष्ठिर कहते हैं—

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रविचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः कियावान् स पण्डिताः॥

(महाभारत, वनपर्व 313/110)

अर्थात पढ़ने-पढ़ाने तथा अनेक शास्त्रों के चिन्तन-मनन करने वाले सभी व्यसनी और मूर्ख हैं। पण्डित अर्थात ज्ञानी तो वह है जो क्रियावान अर्थात आचरण-संपन्न है।

कबीर साहेब ने तो सिर्फ इतना ही कहा है कि पोथियों को पढ़-पढ़ कर लोग मर-मर कर संसार से चले गये, परन्तु प्रेम के अभाव में उनमें कोई पण्डित नहीं हुआ, यहां तो महाभारतकार ने सदाचारहीन पोथी पढ़ने-पढ़ाने वालों को व्यसनी और मूर्ख तक कह डाला है। सच तो है तमाम पोथियों-शास्त्रों को पढ़ने के बाद जीवन सदाचारहीन ही रह गया और जीवन में प्रेम का का उदय नहीं हुआ तो पोथी पढ़ना एक प्रकार का व्यसन ही तो हुआ।

कबीर साहेब कहते हैं कि पोथी पढ़ने वाले पण्डित नहीं हैं, किन्तु पण्डित वह है जिसके मन में मानव ही नहीं प्राणिमात्र के लिए प्रेम है और जिसके सारे कर्म-व्यवहार प्रेमपूर्ण होते हैं। प्रेम से किया गया हर कर्म पूजा है। मंदिरों में की जाने वाली पूजा ही पूजा नहीं है किन्तु पवित्र भावना और प्रेम से किये जाने पर जीवन

निर्वाह के लिए किये जाने वाले सभी कर्म-व्यवहार पूजा है। जिसके जीवन में प्रेम पूर्णरूप से प्रस्फुटित हो चुका है, जिसके जीवन के सारे कर्म-व्यवहार विशुद्ध प्रेम और सेवा भावना से किये जाते हैं उसके लिए पूरा संसार देवमंदिर बन जाता है और प्राणिमात्र भगवान-भगवती तथा देवी-देवता। तभी तो सद्गुरु कबीर ने कहा—

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, कायाकष्ट न धारों।
खुले नैन हँसि हँसि पहिचानों, सुन्दर रूप निहारों॥

सच्चे और पूर्ण प्रेम के उदय हो जाने पर ऊंच-नीच, अहं-हीनत्व, मोर-तोर की भावना पूर्णरूपेण तिरोहित हो जाती है। वहां कोई पराया रह ही नहीं जाता फिर किससे बैर-विरोध, किसके लिए कटुता-कठोरता का व्यवहार। वहां तो सबके लिए दया, क्षमा, करुणा ही रह जाती है, क्योंकि सभी तो अपने प्राणप्यारे हैं—'घाव काहि पर घालों, जित देखूँ तित प्राण हमारो' यहां किसी को भी किसी प्रकार प्रकार दुख देने की भावना सर्वथा समाप्त हो जाती है। क्योंकि सच्चे प्रेम में अपना कोई दैहिक स्वार्थ रह ही नहीं जाता। स्वार्थ चाहे जिस प्रकार का हो प्रेम उदय होने पर गल जाता है।

स्वार्थ में सदैव पाने की भावना रहती है वह चाहे कुछ भी हो और जहां पाने की भावना है वहां प्रेम कहां टिक सकता है। स्वार्थ में लेना रहता है और प्रेम में देना। स्वार्थ देना नहीं जानता और प्रेम लेना नहीं चाहता, क्योंकि जहां लेने और पाने की भावना है वहां व्यापार है, प्रेम नहीं। स्वार्थ की दृष्टि सदैव मुझे कहां से क्या मिल सकता है और मिलना चाहिए इस पर होती है, किन्तु प्रेम की दृष्टि मैं किसको क्या दे सकता हूं और किसको क्या देना चाहिए इस पर होती है। स्वार्थ में भोगदृष्टि रहती है और प्रेम में त्याग। बिना त्याग के प्रेम का न उदय होगा और न त्याग के अभाव में प्रेम टिक सकेगा। यहां त्याग का अर्थ स्थूल-भौतिक पदार्थों का ही त्याग नहीं है, क्योंकि भौतिक वस्तुओं का त्याग एक सीमा में ही किया जा सकता है। यहां त्याग का अर्थ है—अहंकार, स्वार्थ, देहभोग, इंद्रियलालसा, सुखा-सक्ति, आरामतलबी, मानसिक विकारों का त्याग। इनके त्याग के बिना प्रेम का उदय होगा ही नहीं और यदि उदय हुआ भी तो ठहरेगा नहीं। प्रेम में सेवा होती है और सेवा बिना त्याग के संभव ही नहीं है।

शुद्ध प्रेम का अर्थ है पूर्ण निर्लोभता, निष्कामता, निरहंकारता तथा निष्पक्षता। लोभी आदमी प्रेमी हो ही नहीं सकता। हां, लोभी आदमी धन का, रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद का प्रेमी हो सकता है, मनुष्यता का, सत्यता का नहीं, क्योंकि लोभी को बटोरने में, संग्रह करने में, पाने में आनंद आता है और प्रेमी को बांटने में, देने में। लोभी आदमी को दूसरों के दुख-दर्द से कोई मतलब नहीं होता, क्योंकि उसका हृदय क्रूर और कठोर हो जाता है, इसलिए वह किसी के दुख-दर्द की कोई परवाह नहीं करता, बस उसका अपना स्वार्थ पूरा होना चाहिए, किन्तु प्रेमी को सदैव दूसरों के दुख-दर्द की परवाह रहती है। वह तो यही सोचता है कि दुनिया में किसी को किसी प्रकार का कोई दुख-दर्द न मिले, वह तो दूसरों के दुख-दर्द को देखकर करुणाविगलित हो जाता है और स्वयं दुख-दर्द सहनकर दूसरों के दुख-दर्द को दूर करने का भरसक प्रयास करता है। पूर्ण निर्लोभता में ही शुद्ध प्रेम का उदय होता है, और पूर्ण निर्लोभी व्यक्ति ही सच्चा पण्डित है। भले ही वह शास्त्रों का ज्ञाता न हो, यहां तक उसे पोथी पढ़ना भी न आता हो। पोथी पढ़ने वालों में से अधिकतम लोगों की दृष्टि पाने में ही रहती है चाहे वह धन-दौलत हो और चाहे मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति। इसीलिए कबीर साहेब ने कहा—पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पण्डित भया न कोय।

प्रेम का अर्थ है पूर्ण निरहंकारता-निरभिमानता। अहंकार-अभिमान और प्रेम साथ-साथ नहीं चल सकते। अहंकार तो एक प्रकार की मूर्खता है। अहंकार के केन्द्र में सदैव झूठा 'मैं' रहता है, किन्तु प्रेम के केन्द्र में दूसरा अर्थात प्रेमी रहता है। अहंकार को किसी के सामने झुकना पसंद नहीं होता। उसे झुकने में नहीं किंतु दूसरों को झुकाने में आनंद आता है, किन्तु प्रेम में

समर्पण होता है। और समर्पण में विनम्रता होती है और विनम्रता झुकना जानती है, वह किसी को झुकाना चाहती ही नहीं है। अहंकारी आदमी को सदैव अपमान का डर सताता रहता है। उसके मन में रह जाता है केवल ईर्ष्या और द्वेष का जहर, फिर वह प्रेम के अमृत का रसपान कैसे कर सकता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

चाखा चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान॥
प्रेम गली अति संकरी, जामें दो न समाय।
मन तो मैगल हो रहा, कैसे आये जाय॥

जिस प्रकार एक म्यान में एक साथ दो तलवार नहीं रह सकती उसी प्रकार प्रेम और अहंकार एक साथ नहीं रह सकते। प्रेम की गली अत्यंत संकरी है, इसमें एक साथ दो नहीं चल सकते। मन तो मतवाले हाथी के समान अहंकार से मतवाला बना हुआ है, फिर वह इसमें प्रवेश कैसे कर सकता है।

धनमद, राजमद, शासनमद, बुद्धिमद, विद्यामद, बलमद, जातिमद, वर्णमद, संप्रदायमद, त्यागमद किसी भी प्रकार का मद रखकर प्रेम के मार्ग में नहीं चला जा सकता। इस मार्ग में तो वही चल सकता है जो अपने सिर को अपने हाथों काटकर जमीन पर रख देने का साहस रखता हो—सीस उतारे भुईं धरे, तब पैठो घर माहिं।'

सीस उतारकर जमीन पर रखने का अर्थ है—पूर्णरूप से निरहंकार, निरभिमान और विनम्र बन जाना। किसी भी प्रकार का मद-अहंकार रखने वाला विद्वान तो हो सकता है, पण्डित नहीं, क्योंकि जहां मद-अहंकार है वहां प्रेम नहीं होगा। निर्मद व्यक्ति ही पण्डित हो सकता है, क्योंकि वह निरंतर प्रेम-रस का पान करता रहता है।

पण्डित वह होता है जो सब प्रकार से सबसे पूर्ण निष्पक्ष होता है। और निष्पक्षता में ही प्रेम का उदय होता है। प्रायः पोथी पढ़ने वाले शास्त्राभिमानी और संप्रदायाभिमानी होते हैं। उन्हें सारा सत्य अपने ही शास्त्र और संप्रदाय में दिखाई देता है। वे तो यहां तक मानते हैं कि इस पूरे ब्रह्माण्ड में कल्याण का मार्ग एकमात्र हमारा संप्रदाय है। हमारे संप्रदाय (मत-मजहब) द्वारा ही ईश्वर-खुदा-परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है। वह जीवनभर कूपमंडूक बनकर रह जाता है। संप्रदाया-भिमान के कारण उसका मन-हृदय कटु-क्रूर बन जाता है। वह दूसरे संप्रदाय (मत-मजहब) के गुरुओं-महापुरुषों को आदर देना जानता ही नहीं और अपने से भिन्न मत-मजहब वालों तथा अपने से भिन्न विचार रखने वालों के लिए नास्तिक, काफिर, नापाक जैसे निंदासूचक शब्दों का प्रयोग करने लगता है, फिर वह प्रेम का पाठ न पढ़ सकता और न पढ़ा सकता है। जो प्रेम का पाठ पढ़ना-पढ़ाना जानता ही नहीं वह पण्डित कैसे हो सकता है!

निष्पक्ष व्यक्ति दूसरों के लिए निंदासूचक या घृणाव्यंजक शब्दों का प्रयोग करता ही नहीं है, क्योंकि उसके हृदय में प्रेम की रसधार बहती रहती है। वह मधुकरवत सब जगह से सार-सत्य ग्रहण करता रहता है। पण्डित सत्य का प्रेमी होता है, मत-मजहब-संप्रदाय, पोथी-पुराण, वर्ण-आश्रम, जाति-पांति का नहीं। इसलिए वह सब जगह से सार-सत्य ग्रहण कर लेता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

सब काहू का लीजिये, साँचा शब्द निहार।
पक्षपात न कीजिये, कहैं कबीर विचार॥

जहां सच्चा प्रेम होता है वहां पर किसी प्रकार की हिंसा के लिए कोई जगह नहीं होती। वहां तो रह जाती है अहिंसा। और अहिंसा को परम धर्म कहा गया है—'अहिंसा परमोधर्माः' तथा 'परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।' अहिंसा के बिना धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। धर्म है प्राणिमात्र के प्रति सहृदयतापूर्ण व्यवहार और सहृदयतापूर्ण व्यवहार प्रेम के बिना संभव ही नहीं है। वस्तुतः प्रेम और अहिंसा, प्रेम और धर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रेम के बिना न अहिंसा टिकेगी और प्रेम के बिना न धर्म टिकेगा। जहां प्रेम है वहीं

अहिंसा है और जहां प्रेम एवं अहिंसा है वहीं धर्म है और जिसके जीवन में प्रेम, अहिंसा और धर्म हैं वही तो सच्चा पण्डित है। प्रेम, अहिंसा और धर्म के आचरण-व्यवहार के लिए पोथी पढ़ने की नहीं अपितु अपने दिल को, अपने जीवन को पढ़ने की आवश्यकता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।

प्रेम और अहिंसा का पुजारी, प्रेम और अहिंसा को पढ़ने वाला जन्मना जाति के आधार पर किसी को ऊंच-नीच, छूत-अछूत कभी मानेगा ही नहीं। जन्मना जाति के आधार पर मनुष्य ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा होता ही नहीं है, किन्तु मनुष्य छोटा-बड़ा होता है कर्म-आचरण के आधार पर। वर्ण-जाति के आधार पर किसी को ऊंच और पवित्र मानना तथा किसी को नीच-अपवित्र मानना घोर क्रूरता, हृदयहीनता और हिंसा है और जिसका हृदय क्रूरता एवं हिंसा से भरा है, जिसके अंदर जन्मना ऊंच-नीच, अहं-हीनत्व की आग धधक रही है, वह पण्डित कैसे हो सकता है। मनुष्य जन्म-जाति के आधार पर छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच, छूत-अछूत होता है इस धारणा के पीछे पोथी प्रमाण के अलावा और क्या आधार है! जिसकी दृष्टि में आचरण का महत्त्व न होकर जाति-वर्ण का महत्त्व है वह पण्डित कैसे हो सकता है और जो मनुष्यता को ही नहीं समझता वह प्रेम को कैसे समझ सकता है। इसीलिए तो सद्गुरु कबीर ने कहा—पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पण्डित भया न कोय।

प्रेम में त्याग है, उत्सर्ग है, समर्पण है। प्रेम अपने पास कुछ बचाकर रखना नहीं जानता। यह सब कुछ उड़ेल देता है। प्रेम में छल नहीं, निष्छलता है, कपट नहीं, निष्कपटता है। प्रेम में अपना कुछ रह ही नहीं जाता, फिर किसके लिए छल-कपट एवं दुराव-छिपाव। छल-कपट एवं दुराव-छिपाव तो भोग एवं स्वार्थ में होता है। प्रेम में तो बाहर-भीतर एक होता है, क्योंकि वहां भोग-स्वार्थ की गंध भी नहीं रहती। जहां भी भोग-स्वार्थ की भावना रहेगी वहां किसी न किसी रूप में हिंसा जरूर रहेगी और जहां हिंसा है वहां प्रेम कहां होगा।

प्रेम जीवनरसायन है, महौषधि है, अमृत है और और जीवन जीने की सर्वोत्तम कला है। प्रेम मनुष्य को मनुष्यता की धरातल से उठाकर देवत्व के आसन पर आसीन कर देता है। प्रेम में ऊंच-नीच, अहं-हीनत्व, राग-द्वेष की भावना नामशेष ही रह जाती है। वहां इनकी गंध भी नहीं होती। प्रेम में 'सब तेरे तू सबन का' भाव ही रह जाता है। प्रेम में कहीं किसी प्रकार की विषमता नहीं रहती, वहां होती है केवल समता और समता में किसी के लिए ममता नहीं होती है उसमें तो सबके लिए विशुद्ध प्रेम रहता है। जिसके मन में किसी के लिए वैर-विरोध, ममता-विषमता, राग-द्वेष नहीं रहते वही तो सच्चा संत है और जो सच्चा संत होता है वही सच्चा पण्डित होता है। सच्चे संत होने के लिए पोथी पढ़ने की जरूरत नहीं है, किन्तु त्याग और सेवा की जरूरत है और जहां त्याग और सेवा है वहीं तो प्रेम टिकता है, वहीं प्रेम का निवास होता है।

आप पोथी पढ़ना चाहते हैं तो जरूर पढ़ें, जितना पढ़ सकते हैं उतना पढ़ें, परन्तु इतना अवश्य ध्यान रखें कि पोथियों में सिर्फ सूचनाएं हैं, संकेत हैं। वहां मंजिल नहीं, मंजिल की तरफ दिशानिर्देश है। पोथी पकड़कर बैठ जाने से मंजिल नहीं मिलेगी। मंजिल तक पहुंचने के लिए चलना पड़ेगा और चलने के लिए निर्भार होना होगा। भार लादकर ज्यादा दूर और ज्यादा देर तक नहीं चला जा सकता और फिर मंजिल तक पहुंचने का रास्ता अत्यंत नाजुक है। इस पर निर्भार होकर ही चला जा सकता है। ध्यान रहे—'ये चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।' निर्भार होने का अर्थ है—निर्मोह, निर्लोभ, निर्मान और निष्काम होना। जो सबसे निर्मोह, निर्लोभ, निर्मान और निष्काम है वही सच्चा पण्डित है क्योंकि वह प्रेम को पढ़कर प्रेम को जी रहा होता है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय।

—धर्मेन्द्र दास

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

(काम, कारण और निवारण)

लेखक—श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट

राही कहीं है, राह कहीं, राहवर कहीं,
ऐसे भी कामयाब हुआ है सफर कहीं!

अपवित्र विचार क्यों आते हैं, कहां से आते हैं, कब आते हैं? उनका उद्‌गम कहां है ?

इस किले पर हमला करने के लिए इन सब बातों की जानकारी जरूरी है।

× × ×

यहां एक बात समझ लेनी चाहिए कि अपवित्र विचारों से घिर जाना एक बात है और अपने-आपको उनसे घेर लेना सर्वथा दूसरी बात।

प्रायः होता यह है कि हम स्वयं अपने को अपवित्र विचारों से घेरे रखते हैं। मकड़ी की तरह हम खुद अपने चारों ओर यह जाला तानते हैं और उसमें फंस जाने पर रोते हैं कि हाय हम कहां फंस गये!

× × ×

यों, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि न चाहते हुए भी अपवित्र विचार हमें घेर लेते हैं—

'अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥'

यह ठीक है कि एक स्थिति दूसरी से कुछ अच्छी है, विकार स्वतः आकर घेर लें, उसकी अपेक्षा जान बूझकर विकारग्रस्त होना बहुत बुरा है, परंतु चाहे खरबूजा छुरी पर गिरे, चाहे छुरी खरबूजे पर—खरबूजे को हलाल होना ही है! प्राणायाम चाहे सीधा हो चाहे द्राविड़, फल दोनों का एक ही होता है।

× × ×

जैसे भी हो, हमें अपवित्र विचारों से मुक्त होना ही है।

× × ×

अपवित्र विचार दो तरफ से आते हैं—भीतर से और बाहर से।

हृदय जब तक मलिन है, उसमें विषय-भोग की लालसा छिपी बैठी है, गन्दी वासनाएं भरी पड़ी हैं, विषयों का रस बना हुआ है—तब तक अपवित्र विचारों का आना स्वाभाविक है।

हृदय शुद्ध हो जाये, उसकी वासनाएं निर्मूल हो जायें, उसकी गन्दगी जाती रहे, विषयों का रस नष्ट हो जाये, फिर अपवित्र विचार आ ही नहीं सकते।

× × ×

बाहर से आनेवाले अपवित्र विचार संसर्ग-दोष से आते हैं।

हम जो देखते हैं, जो पढ़ते हैं, जो सूंघते हैं, जो चखते हैं, जो छूते हैं, जिस वातावरण में रहते हैं—वह यदि विकारोत्तेजक होता है, तो अपवित्र विचार आये बिना नहीं रहते।

विषयों के पिछले संस्कार, उनकी स्मृतियां भी अपवित्र विचारों को जन्म देती रहती हैं।

हमारा वातावरण पवित्र हो, हम पवित्र प्राणी-पदार्थों के सम्पर्क में आयें, हम पवित्र विषयों को ही ग्रहण करें, पवित्र वस्तुएं ही देखें, चखें, सूंघें, छुएं और पवित्र बातें ही सुनें, तो अपवित्र विचारों की कन्नी अपने-आप ही कट जाये।

× × ×

अपवित्र विचारों से मुक्त होने के लिए हमें पहले बाहरी मोर्चा फतेह करना पड़ेगा, फिर भीतरी। पहले अपने को अपवित्र संसर्ग से दूर रखना होगा, फिर हृदय के भीतर भरे पुराने कूड़े-कचरे को धो बहाना होगा।

बाहर से हमने अपने को शुद्ध कर लिया, पर भीतर ही भीतर हम यदि भोगों में रस लेते रहे तो कभी भी, किसी भी क्षण हम गिर सकेंगे। तब तो हम पर शेख की वही उक्ति फलेगी—

बाकी है दिल में शेख के, हसरत गुनाह की,
काला करेगा मुँह भी, जा दाढ़ी सियाह की।

प्रायः यही होता है कि हम स्वयं ही अपने को अपवित्र विचारों से घेर लेते हैं। हम खुद अपवित्र वातावरण में बैठते हैं और अपवित्र चर्चा में रस लेने लगते हैं। हम ऐसे प्राणी-पदार्थों के सम्पर्क में चले जाते हैं, जो मलिन वासनाओं को जाग्रत् करते हैं।

और तब पतन की ओर जाना क्या कठिन है? कहा ही है—

काजर की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै ॥

× × ×

विचारों के घोड़े इतनी तेजी से दौड़ते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। कभी-कभी इनका पीछा करता हूं तो सन्न रह जाना पड़ता है मुझे। पलभर में सारी दुनिया का चक्कर मार आते हैं।

अभी पटना में हैं, पलक मारते कलकत्ता में। जो स्थान कभी देखे भी नहीं, वहां भी जाते देर नहीं लगती।

और समय का पैमाना तो इनके लिए कुछ है ही नहीं। हृदय में न जाने कितनी स्मृतियां, कितने संस्कार दबे पड़े हैं! कौन विचार स्मृतियों की किस लड़ी को खींच लायेगा, नहीं कहा जा सकता।

× × ×

कोई भी अपवित्र कार्य पहले अपवित्र विचार के रूप में ही जन्म लेता है, फिर बढ़ते-बढ़ते मानव को पतन के गड्ढे में ढकेल देता है।

स्वामी शिवानन्द सरस्वती ने ठीक ही लिखा है—

'Evil thinking is the beginning and starting point of adultery.'

'अपवित्र विचारों से ही व्यभिचार का आरम्भ होता है।'

× × ×

इसी की पेशबन्दी के लिए ईसा ने कहा है—

'Ye have heard that it was said by them of old time. Thou shalt not commit adultery. But I say unto you, that whosoever looketh on a woman to lust after her hath committed adultery with her already in heart.

'And if thy right eye offend thee, pluck it out, and cast it from thee; for it is profitable for thee that one of thy members should perish, and not that thy whole body should be cast into hell.

'And, if thy right hand offend thee, cut it off, and cast it from thee; for it is profitable for thee that one of thy members should perish, and not that thy whole body should be cast into hell.'

—St. Mathew. 5, 28-30

'बुजुर्गों ने कहा है कि तुम व्यभिचार मत करो, पर मैं कहता हूं कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्री के प्रति कुदृष्टि डालता है, तो हृदय में उसने उसके साथ व्यभिचार कर लिया।

और यदि तेरी दाहिनी आंख शरारत करती है, उसे निकाल डाल, दाहिना हाथ बदमाशी करे तो उसे काटकर फेंक दे, क्योंकि सारा शरीर नरक की यन्त्रणा भोगे, उससे तो अच्छा यही है कि शरीर का एकाध अंग ही उसका दण्ड भोगे।'

× × ×

और ऐसा किया है लोगों ने।

कहते हैं कि राजस्थान की एक राजपूत कुमारी ने अपने उस हाथ को काटकर फेंक दिया था, जिसे उसके बहनोई ने विकारग्रस्त होकर छू लिया था।

× × ×

तपस्वी जुन्नून के बारे में कहा जाता है कि एक दिन वे घूमते-घामते एक पहाड़ पर जा पहुंचे।

वहां उन्होंने देखा कि एक झोपड़ी है, जिसके दरवाजे में एक आदमी बैठा हुआ है।

उस आदमी का एक पैर भीतर था और दूसरा बाहर कटा पड़ा था, जिसमें लाखों चींटियां चिपटी हुई थीं।

जुन्नून की जिज्ञासा बढ़ी।

उसे प्रणामकर उन्होंने पूछा—'भैया! यह क्या बात है?'

वह बोला—भैया! अभी एक दिन की बात है, मैं यहीं बैठा था कि सामने से एक युवती निकली, जिसे देखकर मेरा चित्त चंचल हो उठा। उसे और अच्छी तरह देखने के लिए मैं उठ पड़ा और जैसे ही मैंने अपना एक पैर कुटिया के बाहर निकाला कि मुझे यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी–

अरे साधु, तूने सारी शर्म धोकर पी ली है। तीस साल से तू यहां साधना कर रहा है। लोग तुझे 'भक्त' कहकर पुकारते हैं। फिर भी तू आज शैतान के चक्कर में फंसने जा रहा है।

यह सुनते ही मेरा शरीर कांप उठा। सचमुच मैं महान् अनर्थ करने जा रहा था। मैंने तुरंत उस पैर को काटकर बाहर फेंक दिया, जो विकारग्रस्त होकर कुटिया से बाहर निकला था।

× × ×

बिल्वमंगल ने आंखों के द्वारा विकार आने से आंखें ही फोड़ डाली थीं।

× × ×

है हममें आप में ऐसा साहस ?

परंतु, सन्तों की कसौटी यही है।

तुकाराम कहते हैं—

पापाची वासना नको दावूं डोळां
त्याहुनी अंधळा बराच मी।
निंदेचे श्रवण नको माझे कानीं
बधिर करोनि ठेवीं देवा॥
अपवित्र वाणी नको माझ्या मुखा
त्याजहुनि मूका बराच मी।
नको मज कधी पर स्त्रीसंगति
जनांतूनि माती उठतां भली॥

पापदृष्टि से किसी को देखुं, उससे मेरा अन्धा हो जाना भला!

कानों से किसी की निन्दा सुनूं, उससे मेरा बहरा हो जाना भला !

मेरे मुख से अपवित्र वाणी निकले, उससे मेरा गूंगा हो जाना भला!

विकारग्रस्त होऊं, उससे अच्छा है पृथ्वी से मेरे शरीर का ही उठ जाना!

× × ×

स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है[1]—

राम का मन एक बार बिगड़ गया। लाहौर में अपने कोठे पर चढ़ा था। वहां से उसने किसी स्त्री को नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगड़ा। मगर मन की इस अवस्था को देखकर वह तत्काल छाती कूटने और रोने लगा और उस दिन से इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि 'या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे।'

और हठी राम मन को मारकर ही माने!

× × ×

सारी शैतानी तो मन की है। मन के माध्यम से शैतान बहकाता है—इसे देख, इसे सूंघ, इसे सुन, इसे छू!

इन्द्रियों ने जहां मन की बात सुनी, उसके बहकावे पर ध्यान दिया कि पतन का दरवाजा खुला।

जरा चूके कि गये!

× × ×

सारे अनर्थों की शुरुआत किसी-न-किसी अपवित्र विचार से होती है।

---

1. फैजाबाद का वार्तालाप, 12-9-1905।

विषयों का ध्यान किया नहीं, उन पर सोचना शुरू किया नहीं कि आनन-फानन इन्द्रियां बहकना शुरू कर देती हैं, और वे बहकी नहीं कि गिरते क्या देर लगती है!

हृदय में जहां अपवित्र विचार पनपा कि पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इसीलिए जरूरत है कि शुरू में ही अपवित्र विचार की जड़ काट दी जाये। पलभर का भी विलम्ब लगाये बिना उसे बेरहमी से काटकर फेंक दिया जाये।

जरा-सी गफलत की कि शैतान ने अपना जाल फैलाया। देखते-देखते वह इतना मजबूत हो जाता है कि बाद में उसे उखाड़ फेंकना बहुत कठिन हो जाता है। 'उंगली पकड़कर पहुंचा पकड़ना' तो शैतान के लिए आम बात है।

× × ×

वह सोचना ही गलत है कि उंह, इतनी मामूली बात में क्या हो जायेगा। किसी को जरा देख लेने से, किसी की जरा-सी खुशबू ले लेने से, कुछ चीज खा लेने से, किसी को जरा-सा छू लेने से क्या बिगड़ता है?

जी नहीं, ऐसा नहीं है।

बकरी पाती खाति है, ताहि सतावै काम।
नितप्रति हलुआ निगलते, तिनकी जानै राम॥

× × ×

रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श की तो बात ही क्या, सिर्फ चिन्तन से लुटिया डूब जा सकती है।

कबीर ने गलत थोड़े ही लिखा है—

जहाँ जलायी सुंदरी, तहँ जिन जाहु कबीर।
उड़ि भभूत अंगन लगे, सूना करे सरीर॥

× × ×

'जब जलायी गयी स्त्री की राख की यह दशा है, तब रसपूर्वक स्त्री-संसर्ग में रहनेवाले मन की क्या दशा होगी? परस्त्री के साथ कभी एकान्त में न रहो। प्रयोजन के बिना उससे व्यर्थ बातें न करो, परस्त्री की ओर देखनेमात्र से विकार उत्पन्न होता है, बात करने से बढ़ता है, स्पर्श करने से पूर्णता को पहुंचता है।... तुम परस्त्री के साथ गाते हो, नाचते हो, कूदते हो, एकान्त में बातें करते हो, सोते-बैठते हो—अरे मूर्ख! यह तुम्हारे विनाश का मार्ग है। तुम समझते हो कि इससे तुम्हारा क्या होता है? अरे मूर्ख! तुम्हारी अपेक्षा अनेक गुने अधिक शक्तिशाली माया के मोह से मार्गभ्रष्ट होकर धूल में मिल गये। फिर तुम्हारी क्या गिनती? मायिक पदार्थों में एक विशेषता यह है कि जैसे ही प्रेम से तुमने उनकी ओर देखा या सुना कि फंसे और फंसने पर धीरे-धीरे ऐसे गहरे गढ़े में गिरोगे कि जहां से निकलना बहुत ही कठिन होगा।'[1]

ठीक ही कहा गया है।

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्।
तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः॥

आग और घी का सम्पर्क कब भभक उठेगा, कोई नहीं कह सकता। ऐसे मौकों पर कोई यदि बचता है तो भगवान की कृपा से। अन्यथा, दुर्बल मानव में ऐसी शक्ति कहां ?

(कल्याण, मार्च 2022 अंक से साभार)

संसार के भोगों में माना गया सुख चित्त को चंचल करता है और परिणाम में उसे जलाता है। इसी के फल में जीव इस संसार भवाटवी में निरंतर भटकता है। जब जीव सब तरफ से निष्काम हो जाता है, तब उसका सुख स्थिर और निर्भय होता है। पूर्ण निष्काम मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। यह अवस्था निरन्तर के भक्ति, सेवा, ज्ञान, वैराग्य तथा समाधि-अभ्यास से आती है। परमार्थ-पथ पर चलने वालों की अंतिम उपलब्धि है पूर्ण निष्काम हो जाना।

---

1. श्री मगनलाल हरिभाई व्यास 'सत्संगमाला'।

व्यवहार वीथी

सकारात्मक सोच के धनी बनें

एक राज्य पर दूसरे राज्य के राजा ने आक्रमण कर दिया। दोनों तरफ से लड़ाई शुरू हो गयी। आक्रमणकारी राजा ज्यादा शक्तिशाली था। उसके पास शक्तिशाली सेना थी। जिस राज्य पर आक्रमण किया गया था उसका सैन्य-बल कमजोर था। इसलिए उसके सैनिकों में निराशा थी और इसीलिए उसकी हार होती जा रही थी। जब उसके सेनापति ने देखा कि सैनिकों में निराशा है और उनमें लड़ने की इच्छा कम होती जा रही है तब एक दिन लड़ाई शुरू होने के पहले वह अपने सैनिकों को एक मंदिर में ले गया और सैनिकों से कहा—भाइयो! आप सब यहीं बाहर रुकें। मैं अंदर जाकर भगवान की पूजा करके और यह पूछकर आता हूं कि इस लड़ाई में हमारी हार होगी या जीत। यदि भगवान का आशीर्वाद जीत के लिए मिलता है तो हम सब प्राणपण से लड़कर जीत हासिल करेंगे। यदि भगवान की ओर से नकारात्मक उत्तर हार का संकेत मिलता है तो हम बिना लड़े ही आत्मसमर्पण कर देंगे।

सैनिकों को बाहर छोड़कर सेनापति मंदिर के अंदर गया और कुछ देर बाद बाहर आकर कहा—भाइयो! भगवान की ओर से संकेत मिला है कि सिक्का उछालकर देखा जाये। यदि सिक्का चित्त गिरता है तो निश्चित ही हमारी विजय होगी और यदि पट गिरता है तो हार होगी। अब मैं सिक्का उछालकर देखता हूं, जैसा परिणाम आयेगा, हम आगे उसी प्रकार काम करेंगे। ऐसा कहकर सेनापति ने जेब से सिक्का निकालकर ऊपर उछाल दिया। सभी सैनिक बड़ी उत्सुकता से सिक्का के नीचे गिरने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें सिक्का चित्त गिरता है या पट। सिक्का नीचे जब जमीन पर गिरा तो देखा गया सिक्का चित्त गिरा है। यह देखकर सैनिकों में खुशी और जोश की लहर व्याप्त हो गयी कि अब हमें भगवान की तरफ से जीत का आशीर्वाद मिल गया। सभी सैनिक खूब उत्साह के साथ वीरतापूर्वक लड़े और शक्तिशाली शत्रु-सेना को खदेड़कर जीत हासिल कर लिये।

विजय-प्राप्ति के पश्चात सभी सैनिक भगवान का आभार मानने के लिए मंदिर के पास इकट्ठे हुए और कहने लगे कि भगवान के आशीर्वाद से ही हमें विजय मिली है, अन्यथा हमारी हार निश्चित थी। सबकी बातें सुनने के पश्चात सेनापति ने कहा—भाइयो! लड़ाई की शुरुआत में ही आप सबके मन में एक प्रकार की नकारात्मकता हीनभावना घर कर गयी थी कि इस आक्रमणकारी शक्तिशाली सेना के सामने हमारी हार निश्चित है इसलिए हमारी हार होती जा रही थी, परन्तु जब आपने देखा कि सिक्का चित्त गिरा है तब आपके मन में सकारात्मकता, उत्साह एवं विजय-भावना की लहर आ गयी और आपकी विजय इसी सकारात्मकता का परिणाम है। सिक्के को तो चित्त ही गिरना था, क्योंकि इसमें दोनों तरफ चित्त का ही निशान बना है।

याद रखें, आपकी सफलता-असफलता, जीत-हार, मानसिक प्रसन्नता या तनाव, निश्चिंतता या चिंता बाहरी बातों, परिस्थितियों, प्राणी-पदार्थों की अनुकूलता-प्रतिकूलता, कमी-बेशी पर उतना निर्भर नहीं है जितना निर्भर आपके मन के सकारात्मक-नकारात्मक चिंतन पर है। आपके जीत-हार, सुख-दुख बाह्य प्राणी-पदार्थ, परिस्थितियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर 10 से 20 प्रतिशत तक ही अवलंबित है, 80-90 प्रतिशत तो आपकी मानसिकता, आपके सकारात्मक-नकारात्मक चिंतन पर अवलंबित है। यदि आपकी मानसिकता कमजोर है, आपके अंदर हीन भावनाएं हैं, आपका चिंतन नकारात्मक है तो दुनिया की कोई भी शक्ति आपको ऊपर नहीं उठा सकती, आपको विजयश्री नहीं दिला सकती। इसके विपरीत यदि आपकी मानसिकता सबल है, आपका मनोबल सुदृढ़ है और आपका चिंतन सकारात्मक है तो दुनिया की कोई ताकत आपको ऊपर उठने-आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती। अंत में आपकी

ही विजय होगी। इसलिए अपने मनोबल को सुदृढ़ और चिंतन को सकारात्मक बनाये रखें। सुदृढ़ मनोबल एवं सकारात्मक चिंतन हार को जीत में कैसे बदल देते हैं इसका बहुप्रचलित उदाहरण आप जरूर पढ़े या सुने होंगे, फिर से मनन करें—

एक छात्र परीक्षा में कई बार फेल हो जाने से इतनी हीनभावना एवं तनाव के ग्रस्त हो गया कि वह आत्महत्या के इरादे से गांव के बाहर दूर एकांत में एक खंडहर में चला गया और आत्महत्या के उपाय सोचने लगा। वहां बैठे-बैठे वह देखता है कि एक चींटी चावल का एक दाना लेकर दीवार पर चढ़ने की कोशिश कर रही है, किन्तु थोड़ा ऊपर चढ़कर वह नीचे गिर जाती है। परंतु चीटी हार नहीं मानती वह जितनी बार नीचे गिरती है उतनी बार फिर ऊपर चढ़ने की कोशिश करती है और अंत में अपने बिल तक पहुंचने में सफल हो जाती है। इस घटना को देखकर उस हताश छात्र के मन में बिजली-सी कौंध जाती है और उत्साह की लहर दौड़ जाती है, उसका आत्मविश्वास जग जाता है। वह सोचता है कि जब एक छोटी-सी चींटी बार-बार नीचे गिर जाने के बाद भी अपना प्रयत्न नहीं छोड़ती और अंत में सफल हो जाती है तब फिर मैं मनुष्य होकर अपना प्रयत्न क्यों छोडूं। यदि मैं ठीक से पढ़ाई करूं तो मैं निश्चित ही परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता हूं। वह छात्र घर लौट आता है और उत्साहपूर्वक पढ़ाई करने लगता है और अगले वर्ष वार्षिक परीक्षा में अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण हो जाता है।

सकारात्मक सोच-चिंतन एक ऐसा टॉनिक और मंत्र है जो किसी भी परिस्थिति में मनुष्य को निराश, उदास, दुखी और असफल नहीं होने देता। सकारात्मक सोच-चिंतन मनोबल एवं आत्मविश्वास को कभी कमजोर नहीं होने देता। सकारात्मक चिंतन जीवन जीने के नजरिये एवं दृष्टिकोण को बदल देता है। सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति लाभ हो जाने, सुख आ जाने पर न तो उछलने लगता है और न घाटा हो जाने, दुख आ जाने पर रोने लगता है। हर परिस्थिति में वह मानसिक रूप से शांत और स्वस्थ रहता है। घाटा-मुनाफा होने पर सकारात्मक सोच रखने वाला व्यक्ति कैसे स्वस्थ, शांत, प्रसन्न रहता है, निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है—

एक आदमी एक सेठ के यहां काम करता था। वह अपना काम बड़ी ईमानदारी, लगन एवं तत्परतापूर्वक करता था। सेठ उसके काम से बड़े खुश रहता था। एक दिन अचानक बिना पूर्व सूचना दिये वह काम पर नहीं आया। इससे थोड़ा काम तो रुका, फिर काम चल गया। सेठ ने सोचा—यह आदमी बहुत दिनों से मेरे यहां काम कर रहा है और बड़ी ईमानदारी से एवं तत्परतापूर्वक करता है। इसने कभी शिकायत का मौका नहीं दिया है। परन्तु आज तक मैंने इसकी तनख्वाह नहीं बढ़ायी। चलो, इसकी तनख्वाह बढ़ा देता हूं ऐसा सोचकर सेठ ने उसकी तनख्वाह बढ़ा दी। दो दिन बाद वह आदमी काम पर आ गया और अपना काम करने लगा। पहली तारीख को जब उसे बढ़ी हुई तनख्वाह मिली, तब बिना कुछ कहे चुपचाप गिनकर रख लिया।

छह-आठ महीना काम करने के बाद एक दिन फिर वह अचानक बिना कोई सूचना दिये काम पर नहीं आया। इससे सेठ को गुस्सा आ गया और वह उसकी तनख्वाह घटाकर फिर पहले जितनी कर दिया। दो दिन बाद वह आदमी फिर काम पर आ गया और अपना काम करने लगा। पहली तारीख को जब उसे घटी हुई तनख्वाह मिली तो वह चुपचाप गिनकर रख लिया और जाने लगा। सेठ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उसे रोककर कहा—सुनो भाई! तुम कैसे आदमी हो, जब मैंने तुम्हारी तनख्वाह बढ़ायी तब न तो तुम खुश हुए और न आभार माना और अब जब मैंने तुम्हारी तनख्वाह घटा दी तब तुम न तो नाखुश हुए और न शिकायत किये। इसके पीछे क्या राज है? उस आदमी ने कहा—सेठजी! इसमें खुशी और नाखुशी की क्या बात है। जब पहली बार मैं काम पर नहीं आया था तब मेरे घर बेटा पैदा हुआ था। जब मुझे बढ़ी हुई तनख्वाह मिली तो मैंने सोचा बेटा अपने हिस्से का लेकर आया है। और जब मैं दूसरी बार काम पर नहीं आया तब मेरी मां की मृत्यु हुई थी। उसके बाद जब मुझे घटी हुई

तनख्वाह मिली तब मैंने सोचा कि मां अपने हिस्से को लेकर चली गयी। बस, बात इतनी-सी है। उसकी बात सुनकर सेठ ने उसे गले से लगा लिया और कहा—तुमने मुझे जीवन को प्रसन्नतापूर्वक जीने की एक नई सीख, नया दृष्टिकोण दे दिया।

सकारात्मक सोच रखने वाला आदमी हर हाल में खुश रहना जानता है, क्योंकि उसके जीवन का नजरिया-दृष्टिकोण बदल गया होता है। वस्तु और परिस्थिति आधारित जो प्रसन्नता होती है, वह क्षणिक होती है, वस्तु और परिस्थिति के बिगड़ते-बदलते समाप्त हो जाती है, किन्तु सकारात्मक सोच-चिंतन आधारित प्रसन्नता स्थायी होती है। सकारात्मक सोच रखने वाला व्यक्ति केवल अपने लाभ या सुख के बारे में ही नहीं सोचता, किन्तु वह दूसरों के लाभ एवं सुख के बारे में भी सोचता है।

दूसरों के लाभ एवं सुख को देखकर वह प्रसन्न होता है। केवल अपने लाभ एवं सुख के लिए सोचने वाला व्यक्ति स्वार्थी होता है और स्वार्थी आदमी मानसिक रूप से कभी स्वस्थ और प्रसन्न नहीं रहता। सकारात्मक सोच रखने वाला व्यक्ति घाटा उठाकर, नुकसान सहकर भी दूसरे के सुख को देखकर प्रसन्न हो जाता है।

एक आफिस में काम करने वाले एक सज्जन के पास एक आदमी आया और बहुत विनीत स्वर में गिड़गिड़ाकर कहने लगा कि मेरी पत्नी बहुत बीमार है और अस्पताल में भर्ती है। उसके इलाज में बहुत खर्च हो रहा है। मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मेरी सहायता कीजिए। अभी मुझे उसकी दवाई के लिए दो हजार रुपये की सख्त जरूरत है। उसके याचना भरे स्वर को सुनकर उस सज्जन ने उसे दो हजार रुपये दे दिया। दूसरे दिन उसने अपने सहकर्मियों से जब इस बात की चर्चा की तब उसके सहकर्मियों ने हंसकर कहा—तो उसने आप को भी ठग लिया। उसकी पत्नी बीमार नहीं है। पत्नी की बीमारी का नाम लेकर वह इसी प्रकार लोगों को ठगता रहता है। उस सज्जन ने पूछा—क्या सचमुच में उसकी पत्नी बीमार नहीं है? सहकर्मियों ने कहा—बिलकुल ही नहीं। उस सज्जन ने कहा—हे भगवान! यह तो बहुत ही अच्छी बात सुनने को मिली। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि उसकी पत्नी बीमार नहीं है और स्वस्थ है।

उस सज्जन को दो हजार रुपये ठगा जाने का दुख नहीं हुआ, किन्तु यह जानकर खुशी हुई कि उसको ठगने वाले की पत्नी बीमार नहीं है। यही है सकारात्मक सोच। ऐसी सोच रखने वाले व्यक्ति को कौन दुखी कर सकता है। इसलिए अपने मन से सारी नकारात्मकता को निकालकर सकारात्मक और ऊंची सोच के धनी बनें। भौतिक धन के धनी सब नहीं बन सकते, किन्तु सकारात्मक सोच के धनी तो सभी बन सकते हैं। इसमें सिवा लाभ के किसी प्रकार की कोई हानि है ही नहीं। केवल अपने बारे में ही न सोचकर दूसरों के बारे में भी सोचना शुरू करें। याद रखें, देने में जो खुशी है, वह पाने में नहीं है। किसी को कुछ देने के लिए आपके पास कुछ नहीं है, इसलिए आप किसी को कुछ नहीं दे सकते, परन्तु आप देने के बारे में तो सोच ही सकते हैं। इसमें तो आपका किसी प्रकार का कोई नुकसान नहीं होने वाला है। यदि आप देने के बारे में भी नहीं सोच सकते तो समझना होगा कि आप भयंकर नकारात्मकता के शिकार हो चुके हैं और मानसिक रूप से कभी प्रसन्न नहीं रह सकते, भले ही आप भौतिक धन-ऐश्वर्य से संपन्न क्यों न हों। इसलिए आज और अभी इसी क्षण से अपनी सारी नकारात्मकता को मन से निकालकर सकारात्मक सोचना शुरू करें और अपनी सोच को सदैव ऊंची बनाकर रखें।

अपनी सोच को कैसे ऊंची बनाकर रखना है। निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है—

एक आदमी ने देखा कि एक बच्चा उसकी नयी कार को बड़े गौर से देख रहा है। उसको उस बच्चे पर दया आ गयी और उससे पूछा—क्या तुम इस कार में कुछ देर बैठना चाहोगे? बच्चे ने कहा—अवश्य! यदि आप बैठाना चाहें! उस आदमी ने उस बच्चे को कार में बिठा लिया। कार में बैठने के बाद बच्चे ने कहा—आप की कार बड़ी महंगी है न? उस आदमी ने कहा—हां, जानते हो, इस कार को मुझे मेरे बड़े भाई ने दिया है।—►

मन और जीवन

लेखक—विवेकदास

मन और जीवन वैसे तो अलग-अलग लगते हैं, पर अलग नहीं हैं। जीवन से मन को अलग नहीं किया जा सकता और न ही मन से जीवन को अलग किया जा सकता है। यदि हम कहें मन ही जीवन है तो कोई गलत न होगा।

मन से जीवन बनता है और जीवन से मन बनता है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हम यदि किसी के लिए कहते हैं कि उसका जीवन अच्छा है तो इसका मतलब यह नहीं कि उसका शरीर अच्छा है या उसका रंग-रूप अच्छा है। बल्कि इससे तात्पर्य होता है कि उसका मन अच्छा है। और यदि हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति का मन अच्छा है तो इसका मतलब है कि उसका जीवन अच्छा है। कहने का अर्थ है मन और जीवन एक ही बात है।

बच्चा बोला—आपके बड़े भाई कितने अच्छे आदमी हैं और आपको कितना प्यार करते हैं, जिन्होंने आपको यह कार दी है। आदमी—मैं समझ गया कि तुम भी अपने लिए ऐसी कार चाहते हो। बच्चे ने कहा—नहीं, मैं आपके बड़े भाई जैसा बनना चाहता हूं, क्योंकि मेरे भी छोटे भाई-बहन हैं न!

यही है ऊंची सोच। अपनी सोच, चिंतन-विचार, अपने दृष्टिकोण को सदैव ऊंचा और सकारात्मक बनाकर रखें। ऊंची सोच, उच्च विचार, सकारात्मक चिंतन के धनी बनें। सफलता आपके कदम चुमेगी और मानसिक प्रसन्नता आपकी सहधर्मिणी बनकर छायावत सदैव आपका अनुगमन करती रहेगी। हां, इसके लिए आवश्यक है सत्साहित्यों का अध्ययन और सज्जन-सत्पुरुषों का साहचर्य एवं संगत।

ध्यान रखें, मानसिक तनाव, अवसाद, चिंता से सदैव मुक्त रहने के लिए सकारात्मक और ऊंची सोच, चिंतन और दृष्टिकोण के अलावा और कोई उपाय नहीं है।

—धर्मेन्द्र दास

जैसा हमारा मन होता है वैसा ही हमारा जीवन होता है। इसलिए जीवन को अच्छा और सुन्दर बनाना चाहते हैं, तो मन को अच्छा और सुन्दर बनाने की आवश्यकता होगी। बिना मन को अच्छा बनाये, जीवन अच्छा हो ही नहीं सकता। इसलिए हमें मन को अच्छा बनाने के लिए प्रयत्नवान होना है।

यूं तो हर आदमी अच्छा जीवन ही चाहता है। वह चाहता है कि मुझे लोग अच्छा मानें, अच्छा कहें और मेरी अच्छी चर्चा समाज में हो। पर यह तभी हो सकता है जब हम सचमुच ही अच्छे होंगे। कौन अच्छा है और कौन बुरा इसके लिए हमारी दृष्टि साफ ही होती है। हम लोगों के बात-व्यवहार को देखकर सहज ही समझ जाते हैं कि अमुक व्यक्ति अच्छा है और अमुक व्यक्ति बुरा है। परन्तु जिस आधार पर हम दूसरों को अच्छा और बुरा मानते हैं उस आधार पर अपने आपका मूल्यांकन नहीं करते हैं। जैसे एक क्रोधी, द्वेषी, कुटिल, चालाक, चोर, घुसखोर, निंदक और व्यभिचारी व्यक्ति को हम कभी भी अच्छा नहीं मानते। चाहे वह कितना ही अपना अंतरंग व्यक्ति ही क्यों न हो। तो फिर इन विकारों में से कोई भी विकार हमारे अंदर हो तो हम अच्छा कैसे हो सकते हैं। और लोगों को अच्छा कैसे लग सकते हैं। फिर भी हम सफेदपोश बनकर अच्छा दिखना चाहते हैं, अच्छा कहलाना चाहते हैं।

कहा जाता है एक गंवई आदमी को किसी काम के लिए अपने फोटो की आवश्यकता पड़ी। वह कभी स्टूडियो नहीं गया था और न ही कभी फोटो खिंचवाया था। वह एक स्टूडियो में गया और फोटोग्राफर से फोटो निकलवाने की बात कही। उसकी बात सुनकर फोटोग्राफर ने उससे पूछा कि आपको कितने रुपये वाले फोटो खिंचवाना है, पांच वाला, दस वाला या पन्द्रह वाला। उस व्यक्ति को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—यह क्या, फोटो तो फोटो है इसमें अलग-अलग कीमत क्यों है? तो उस फोटोग्राफर ने कहा कि आप

जैसा फोटो चाहेंगे वैसी कीमत है। आप जैसे हैं वैसा ही फोटो चाहिए तो उसकी कीमत पांच रुपये है। जैसा लोग देखना चाहते हैं वैसा फोटो चाहिए तो उसकी कीमत दस रुपये है। और जैसा आप दिखना चाहते हैं वैसा फोटो चाहिए तो उसकी कीमत पन्द्रह रुपये है। वह तो बेचारा गांव का सरल आदमी था, उसने कहा— हमें और कुछ नहीं, हम जैसे हैं वैसा ही फोटो हमें चाहिए।

यह तो कहानी हुई। वास्तव में हम जैसे हैं वैसा ही दिखना नहीं चाहते, कुछ अलग ही दिखना चाहते हैं। कुछ अलग दिखाना चाहते हैं और इसीलिए शायद कुछ लोगों का व्यवहार लोगों के बीच कुछ और होता है और अपनों के बीच कुछ और होता है।

चाहे हम अपने आपको कितना भी बनायें और अलग दिखाने की चेष्टा करें, पर जो हमारे स्वभाव में होगा, जो हमारे मन में होगा, वह व्यवहार में आ ही जायेगा। इसलिए बाहर से सुधार न करके आंतरिक सुधार पर बल दिया जाना चाहिए। यदि हम अपना आंतरिक सुधार, तात्पर्य में अपने मन में सुधार कर लिये तो जीवन का सुधार हो जायेगा और हम लोगों में जो दिखना या दिखाना चाहते हैं वह लोगों के सामने होगा।

चूंकि मन और जीवन एक दूसरे के पूरक हैं और मन के सुधार से ही जीवन का सुधार संभव है तो हम मन को ही बारीकी से समझने की चेष्टा करते हैं। मन क्या है? देखे, सुने और भोगे हुए संस्कारों का समुच्चय। मन एक तरह से संस्कारों का बंडल है और इन्हीं संस्कारों से हमारी आदतों का निर्माण होता है। हम जीवन व्यवहार में जिन कामों को जितना ही रागपूर्वक करते हैं उसके संस्कार उतने ही प्रबल होते हैं और बार-बार हमें उन-उन कामों को करने के लिए प्रेरित करते हैं। अब यह भी समझ लें कि राग कैसे उत्पन्न होता है? जिन कर्मों को करने में प्रियता का या अनुकूलता का अहसास होता है उन कर्मों के प्रति हमारा राग होता है और हम राग से प्रेरित होकर उन कर्मों को बार-बार करते हैं। एक बात और समझने योग्य है राग के साथ द्वेष भी खड़ा रहता है। जहां अनुकूलता की प्रतीति होती है वहां रागपूर्वक कर्म करते हैं। पर जहां प्रतिकूलता का एहसास होता है वहां हम द्वेषपूर्वक कर्म करने पर तत्पर हो जाते हैं और पदे-पदे उधर प्रवृत्त होते हैं। वैसे तो राग ही द्वेष का जनक है। अपने आप में द्वेष कुछ है ही नहीं, क्योंकि कहीं प्रियता की मान्यता हुई तो फिर कहीं न कहीं अप्रियता की भावना भी खड़ी हो ही जायेगी। और द्वेषपूर्वक कर्म भी होने लगेंगे। इसलिए राग के तंतु को ही काटना है।

राग एक ऐसा मीठा जहर है कि पहले पता ही नहीं चलता है इससे दुख या पीड़ा हो सकती है। पर होता जरूर है। राग कहीं भी हो सकता है व्यक्ति, वस्तु, मान्यता, अवधारणा, महापुरुष, मत-मजहब आदि पर। एक बात तो तय होता है जहां कहीं भी राग होगा, न हम वस्तुतथ्य का सही मूल्यांकन कर पायेंगे और न ही दूसरों के साथ न्याय कर पायेंगे। क्योंकि राग में मनुष्य इतना अंधा हो जाता है कि उसे सही-गलत का फर्क पता नहीं चलता। फिर वह एक प्रकार से अंधानुकरण ही करने लगता है। फिर ऐसे व्यक्ति से न यथार्थ समझ की अपेक्षा की जा सकती है और न ही ऐसे व्यक्ति को कभी आंतरिक शांति का अनुभव हो सकता है।

जब हम किसी एक महापुरुष, मत, पुस्तक या मान्यता पर राग कर लेते हैं तो हमारा चित्त उसमें ऐसा बंध जाता है कि उसके अलावा न हम सोच पाते हैं और न ही हमें कहीं सत्य-सार दिख पाता है। फिर यह हिंसा और द्वेष भी पैदा करता है जो कि हमें सही अर्थ में मनुष्य ही रहने नहीं देता। इस सच्चाई को यदि जानना चाहें तो किसी भी मत-सम्प्रदाय में जाकर देख सकते हैं कि कैसे वहां घेरेबंदी की बात कही जाती है और किस प्रकार औरों को तुच्छ और बेकार साबित किया जाता हैं।

जीवन को हम होशपूर्वक जी ही नहीं पाते हैं और एक तरह से हमें जीने भी नहीं दिया जाता है क्योंकि ऐसा समाज, ऐसी सोसायटी, ऐसे लोग, ऐसे सम्बंधी हमें घेरे रहते हैं और हमें ऐसी दिशा देते हैं कि हमारा होश ही गायब हो जाता है। क्योंकि हम इन्हीं से तो

सीखते हैं। फिर भी हमारा एक वजूद है, हमारा एक व्यक्तित्व है हम होश और जागरणपूर्वक जी सकते हैं। यदि हम चाहें तो। इसके लिए हमें औरों को नहीं सिर्फ अपने को देखना होगा, अपने ही जीवन को खंगालना होगा। हम अपने जीवन में जब भी दुखी, अशांत और पीड़ित हुए हैं उसको ठीक से देख पायें तो कहीं न कहीं हमारी बेहोशी ही नजर आयेगी।

चाहे हम कहीं राग करके दुख पाये हों चाहे कहीं द्वेष करके दुख पाये हों, चाहे किसी से क्रोध करके दुख पाये हों या चाहे किसी से घृणा करके। किसी से अपमान पाकर दुख पाये हों चाहे किसी से उपेक्षा पाकर, आप देख पायेंगे तो पता चलेगा और कुछ नहीं सिर्फ और सिर्फ हमारी बेहोशी ही कारण रही है। जो कुछ भी जीवन में हम करते हैं संस्काराधीन होकर ही करते हैं। जैसी हमारी मनोदशा होती है वैसा हम करते हैं। यदि हम बेहोशीपूर्वक कर्म कर रहे हैं तो हमारे संस्कार वैसे हैं। जागरण के संस्कार है ही नहीं। फिर जीवन अच्छा और सुखद कैसे हो सकता है। फिर जीवन में आनंद के फूल कैसे खिल सकते हैं।

बात है जैसा मन होता है वैसा जीवन होता है। हम जो भी कर्म करते हैं संस्कार के आधीन होकर, मन के आधीन होकर। फिर कर्म के अनुसार हमारे जीवन का निर्माण होता है। अब बात आती है कि पहले चाहे जैसे संस्कार रहा है, चाहे जैसा मन रहा है, चाहे जैसा जीवन रहा है पर अब जीवन कैसे अच्छा हो? कैसे जीवन में आनंद और शांति के फूल खिले?

तो फिर हम मन की उस परिभाषा को लेते हैं कि देखे, सुने और भोगे हुए संस्कारों का समुच्चय मन है। अर्थात जो कुछ भी हम अपने ज्ञान-इन्द्रियों द्वारा कर्म करते हैं उसी से मन तैयार होता है। तो फिर होगा कि जो भी देखना, सुनना, करना हो वह सही हो। मतलब ऐसा कुछ व्यवहार न करें जिससे कि गलत संस्कार बनें। अब हम जो कुछ भी करें मन को, जीवन को ध्यान में रखकर करें। पर यह बात भी है कि मन के संस्कार जो पुराने हैं वे हमें पुनः वैसे कर्मों की तरफ प्रेरित करेंगे और हम न चाहते हुए भी उन कर्मों में प्रवृत्त हो सकते हैं जो हमारे लिए दुखप्रद या बाधा रूप हैं क्योंकि पुरानी आदतों का एकाएक बदलाव संभव भी नहीं है। तो इसके लिए क्या करें जिससे पुनः उन कर्मों की पुनरावृत्ति न हो और अच्छे कर्मों का सम्पादन हमारे द्वारा हो। इसके लिए कुछ बातों पर ध्यान देना होगा—

1. अच्छे लोगों का संग—जब हम पुण्यात्मा या अच्छे लोगों का संग-साथ करते हैं तो एक प्रकार से हमारे जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होने लगता है। उनके ज्योतित और निर्मल जीवन को देखकर हमें लगता है कि हम भी ऐसा जीवन जीयें। हमें उससे एक प्रकार से बल मिलता है। आदर्श की बातें पुस्तकों में लिखी है या किसी से सुनी है उसका प्रभाव हमारे मन पर उतना नहीं पड़ता है जितना कि किसी आदर्श व्यक्ति को देखकर पड़ता है। जब हम किसी पवित्रात्मा को निर्मलतापूर्वक जीवन जीते देखते हैं तब हमें भी लगता है कि हम भी ऐसा क्यों नहीं जी सकते। यह आत्मबल हमें सत्कर्मों की तरफ प्रेरित करता है।

2. अच्छे साहित्य का अध्ययन—अच्छे साहित्यों का अध्ययन एक प्रकार से हमारे मन की नकारात्मकता को दूर करके सकारात्मक भाव पैदा करता है जिससे हमारे विचार और कर्म सकारात्मक होने लगते हैं। हम जीवन में किन्हीं समस्याओं में फंसने लगते हैं तो सत-साहित्यों के माध्यम से उनसे जल्दी उबर जाते हैं। अच्छे साहित्य एक प्रकार से अच्छे मित्र की तरह होता है जो कि हमे पदे-पदे मार्गदर्शन करता रहता है। कैसे, एक सच्ची घटना से समझें—

एक युवक किसी बात को लेकर एकदम डिप्रेशन में चला गया और उसको अब बार-बार आत्महत्या करने का ही विचार आने लगा। वह चाहकर भी इस विचार को दूर नहीं कर पा रहा था। वह एक प्रकार से मानसिक रोगी जैसा हो गया। डॉक्टरों के पास गया पर कोई लाभ नहीं हुआ। वह एकदम परेशान हो गया। संयोग से उसके हाथ एक विचारक की पुस्तक लगी, जो मनोविज्ञान सम्बंधी थी। वह पढ़ने लगा उसमें क्षमा के महत्त्व पर विशेष बातें थी। वह पढ़कर उसे अपने जीवन में प्रयोग करने लगा। उसने बताया कि वर्षों

पहले भी किसी से बोलाचाली लड़ाई-झगड़ा हो गया था, सबके पास जाकर क्षमा मांगा और जो नहीं मिले उनको दिल से याद करके क्षमा मांगा और आज मैं बहुत ही सुकून और अच्छा अहसास कर रहा हूं। उसने बताया कि अब मैं प्रतिदिन नियमित सद्ग्रंथों का अध्ययन करता हूं। अच्छे साहित्य एक प्रकार मार्गदर्शक की भांति हमें सहारा देते हैं। इसलिए हमें जीवन में अच्छे साहित्य के अध्ययन में अभिरुचि रखनी चाहिए।

3. आत्ममंथन—जब तक हम आत्ममंथन नहीं करेंगे तब तक पता कैसे चलेगा कि हमारे अन्दर अच्छाई क्या है, और बुराई क्या है। एक गुनाहगार व्यक्ति भी अपने को अच्छा और सही ही मानता है। उसके पास अपने को सही साबित करने के लिए अनेकों तर्क होते हैं, किन्तु जब वह निष्पक्षता से अपने आपको देखता है, आत्ममंथन करता है, तब उसको लगता है कि वास्तव में मैं क्या हूं, और मैं कहां हूं।

एक व्यक्ति का अपने भाई से किसी बात पर झगड़ा हो गया। वह इतना अधिक उग्र हो गया कि अपने भाई को जान से मार दे। पर संयोग कि उसे वह मार तो नहीं पाया किंतु उसकी फसल में आग जरूर लगा दिया। भाई की चार महिने की कमाई खलिहान में ही जलकर राख हो गयी। पर जब उसको होश आया, क्रोध शांत हुआ और मंथन किया तो उसे एहसास हुआ कि मैं आवेग में आकर यह क्या कर डाला। उसने अपने भाई से क्षमा मांगी और सालभर तक उसके खाना-खर्च का भार उठाया और फिर से उसका अपने भाई के साथ आत्मीयता हो गयी।

आत्ममंथन वह साधना है जिससे हम अपने आपका सही मूल्यांकन कर पाते हैं। इसलिए समय-समय पर आत्ममंथन—अपने आपकी निरख-परख स्थिर चित्त से जरूर करना चाहिए।

4. आत्म संकल्प—संकल्प में महान शक्ति होती है। यदि हम किसी कार्य के लिए दृढ़ संकल्प होते हैं तो वह पूरा होता ही है। हम पहले कैसे थे, क्या किये, कैसे जीये? इसको हम बदल नहीं सकते। वह हमारे हाथ में नहीं है, किन्तु वर्तमान में वस्तु तथ्य को समझकर सत्य के प्रति, सत्कर्म के प्रति संकल्पवान होकर अपने मन और जीवन को अच्छा बना सकते हैं। सद्गुरु श्री पूरण साहेबजी ने कहा है—वर्तमान में बरतो भाई। भूत भविष्य को देहु बहाई॥

यदि हम शुभ संकल्प के साथ वर्तमान में कर्म और आचार-विचार करते हैं तो निश्चित ही हमारा संस्कार अच्छा होगा और जीवन भी अच्छा होगा। संकल्पशक्ति की थोड़ी बानगी लें—जब किसी दिन कोई उपवास या व्रत रखना होता है उस दिन हम भोजन त्याग देते हैं। कुछ लोग तो अमुक-अमुक पर्व पर निर्जला व्रत भी रखते हैं। विचार करें, उस दिन यदि कोई मनपसंद भोजन बने जो कि आपको बहुत रुचता है, भाता है तो भी मन उधर खिंचता नहीं है, खां लूं ऐसा नहीं होता है। हां, यदि संकल्प मजबूत नहीं है तो मन, डगमगाता रहता है। परन्तु प्रायः किसी बात के लिए दृढ़ संकल्प लेते हैं तो वह करने में सहज हो जाता है। चाहे आदमी कितना भी गलत पथ पर चला हो, चाहे कितना भी गलत किया हो, परन्तु दृढ़ संकल्प के द्वारा वह अपने को सही दिशा में ला सकता है। अपने जीवन को अच्छा और सुन्दर बना सकता है। आत्मसंकल्प-आत्मबल अच्छे लोगों के साहचर्य से बढ़ता और दृढ़ होता है क्योंकि जब हम कमजोर पड़ने लगते हैं तो उनका सहारा, उनका आदर्श हमें बल प्रदान करता है।

इस तरह हम अच्छे संग, साहित्य, आत्ममंथन और संकल्प द्वारा जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाकर सुखद और शांतिपूर्ण जीवन के सम्राट बन सकते हैं। मन की पवित्रता, मन की निर्मलता, मन की अवक्रता और सहजता हो जाये तो जीवन सुन्दर, सुखद और आनंदमय हो जायेगा क्योंकि मन ही जीवन है।

मन और जीवन अलग नहीं, करो विचार और देखो तुम।
मन से जीवन, जीवन से मन है, स्थिर चित्त निरेखो तुम॥
मन उलझे जीवन उलझाये, मन के साथ जीवन बेदम।
सुलझे मन जीवन सुलझाये, बड़ी विपत्ति भी लागे कम॥
मन से मंथन मन से मुक्ति, मन से जीवन होता नम।
मन ही से तो जगत पसारा, मन से ज्यादा मन से कम॥
मन से ज्ञान ध्यान मन ही से, मन से भक्ति होय विनम्र।
मन विवेक सार्थक जब होवे जनम मरण का मिटै क्रम॥

शह भी आपकी, सफलता भी आपकी

लेखक—श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज

(गतांक से आगे)

अपने रंगरूप को देखकर मन छोटा न कीजिए। सुकरात और सिकंदर भी सांवले थे, देश के महान् कवि मलिक मोहम्मद जायसी भी काने थे। रंग से काला या सांवला होना कोई बात नहीं है। यह तो प्रकृति की दी हुई चीज़ है, पर आप अपने मन को तो उजला बना सकते हैं। चेहरे को रंग देना प्रकृति का काम है, पर अपने मन को रंग देना तो आप ही के बस में है। मैं एक ऐसे डॉक्टर को जानता हूं जो हमारे बहुत क़रीब सम्पर्क में हैं। मैं इस घटना का पहले भी उल्लेख कर चुका हूं। आज फिर इसलिए कहना चाहता हूं कि आप प्रेरणा ले सकें। हां, वह डॉक्टर एकदम काला और चेचक के दागों वाला है। शायद उसे देखकर ही हम अपनी नज़र घुमा लें, लेकिन उसकी पत्नी बेहद ख़ूबसूरत है। इतनी सुंदर कि देखते रह जायें। एक बार मैंने उनसे पूछा, (बहुत करीबी है इसलिए पूछ सका), 'बहिन, एक बात बताओ।' 'फरमाइये' उसने कहा। मैंने कहा, 'एक बात बताओ बहिन, आपकी पहली शादी है या दूसरी।' 'पहली ही शादी है, क्यों?' उसने सवाल किया। मैं थोड़ा चौंका, 'पहली शादी और इतना बदसूरत पति।' मैंने कहा, 'क्या शादी से पहले माता-पिता ने लड़के को देखा नहीं था?' 'यह शादी मां-बाप ने नहीं की, यह मैंने ख़ुद की है, हमारी लवमैरिज है', उसने बताया। अब तो मैं और अधिक चौंक गया, यह तो ग़ज़ब हो गया, फिर भी कहा, 'बहिन, बात समझ में नहीं आई। आप तो कह रही हैं कि यह लव-मैरिज है, ऐसा कैसे हो सकता है?' बहिन ने बताया, 'हम लोग कॉलेज में पढ़ते थे, पढ़ाई के दौरान ही मैं इनके सम्पर्क में आई। कॉलेज में दो हज़ार विद्यार्थी थे, आप सुनकर ताज्जुब करेंगे कि उन दो हज़ार विद्यार्थियों के बीच यही एक ऐसे इन्सान थे जिनके गुणों ने, सीरत और स्वभाव ने मुझे प्रभावित किया। मैंने महसूस किया कि व्यक्ति रंग से काला है तो क्या हुआ किन्तु यह अपने चरित्र और गुणों से तो महान् है और मैंने शादी का प्रस्ताव रख दिया। यह मेरी पसंद है, मैंने स्वयं ही इनसे शादी की है। हकीकत तो यह है कि मैंने इनके रंग-रूप से नहीं बल्कि इनके गुणों से शादी की है।' मैंने सुना और खूब आनन्दित हुआ।

थोड़ी देर बाद उसके पति भी हमारे पास आए। बातें चल रही थीं, तभी मैंने उनसे भी पूछा, 'एक बात बताएं आपका ऐसा काला रंग है, मोटी नाक और चेचक के दाग हैं, कभी आपको गिल्टी फील नहीं हुई।'

उन्होंने कहा, 'बचपन में गली-मोहल्ले के सारे बच्चे मुझे 'कालू-कालू' कहकर पुकारते थे। जब वे मुझे कालू कहते तो मुझे बहुत तकलीफ़ होती थी। तभी उन दिनों मैंने यह संकल्प कर लिया था—'ऐ कालू, तू अपना रंग तो नहीं बदल सकता, लेकिन अपने जीने के ढंग को तो जरूर बदल सकता है। बस तब मैं अपनी शिक्षा और जीवन के प्रति गंभीर हो गया और वह भी इतना कि आज मैं शहर का सम्मानित डॉक्टर माना जाता हूं। लोग मेरे चेहरे को नहीं देखते, वरन् मेरी प्रेक्टिस, मेरी पारंगतता, मेरे अच्छे गुणों से प्रभावित होकर मेरे पास आया करते हैं'।

यही बात मैं आप लोगों से कहना चाहूंगा कि व्यक्ति के रंग पर न जायें, उसकी ग़रीबी का मज़ाक न बनायें क्योंकि हमारे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री भी अत्यंत गरीबी में पैदा हुए थे। हमारे राष्ट्रपति अब्दुल कलाम भी गरीब घर में जन्मे थे। ग़रीबी जीवन के विकास में बाधक नहीं बनती। इसलिए मैं कहूंगा कि करोड़पति का बेटा अगर करोड़पति है तो क्या ख़ासियत? हां, ग़रीब का बेटा करोड़पति हो गया तो यह उसकी विशिष्टता है। वह बधाई का पात्र है, क्योंकि अपने बलबूते पर उसने यह मुकाम हासिल किया है। तुम ख़ुद कुछ बनो, यह तुम्हारी योग्यता की तारीफ़ है।

सकारात्मक सोचें। सुबह उठकर सोचें कि आज मैं यह कर सकता हूं, बिल्कुल कर सकता हूं। मैं

ख़ुशनसीब हूं। मैं वह सब काम कर सकता हूं जो कि कोई दूसरा कर सकता है। बस, मुझे थोड़ी मेहनत करके काम का तज़ुर्बा लेना होगा। आपको यह भी सकारात्मक सोच विकसित करनी चाहिए कि मैं किसी से कम या कमज़ोर नहीं हूं। मेरा यह फैसला है कि मैं भयमुक्त, चिंतारहित और तनावविहीन ज़िंदगी जीऊंगा। ध्यान रखिए मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। अपनी सोच में साहस और आत्मविश्वास को जगह दीजिए, आपके जीवन में हर परिस्थिति का सामना करने का सामर्थ्य ख़ुद ही आ जायेगा।

किसी कम्पनी में से एक कम्प्यूटर ऑपरेटर को निकाल दिया गया। वह बोला, 'मैं आराम से अपना इस्तीफा दे देता हूं, क्योंकि यहां रहकर छल, कपट, प्रपंच, झूठ का सहयोगी नहीं हो सकता।' जब वह जाने लगा तो मैनेजर ने कहा, 'तुम तो ऐसे नौकरी छोड़कर जा रहे हो जैसे अमेरिका कमाने जा रहे हो। तुम्हारे लिए क्या नौकरी तैयार पड़ी है?' 'बिल्कुल सर, जब मैंने कल इस्तीफ़ा देने के बारे में सोचा था तो यही निर्णय किया कि यहां से मैं अमेरिका ही जाऊंगा।' 'अमेरिका! अरे, वहां पर तुम्हें रखेगा कौन?' उसने कहा, 'प्रश्न यह नहीं है कि वहां मुझे कौन रखेगा, सवाल यह है कि वहां मुझे रखने से कौन इन्कार करेगा? मेरी योग्यता मेरे जीवन का धन और प्रतिष्ठा है।'

आप कहां रहते हैं, इससे अधिक मूल्यवान है आप अपनी प्रतिभा का मूल्यांकन करते हैं या नहीं। आपके आंखें हैं या नहीं, इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि आपमें, आपके पास उजाला है या नहीं! अगर अपनी योग्यता कम समझते हैं तो आप हीनभावना से ग्रस्त हैं। अगर आपको लगता है कि आप कुछ नहीं कर सकते तो आप हीनभावना से पीड़ित हैं। कोशिश कामयाबी का आधार है। पहले चरण में ही हार न मानें। पहला चरण तो आत्मविश्वास से भरा हुआ होना चाहिए। कोशिश ही कामयाबी का द्वार है।

एक बात और, अपने जीवन में आलोचना सहने की आदत डालिए। कोई आपकी आलोचना करे तो परवाह मत कीजिए। दुनिया में किस आदमी की आलोचना नहीं हुई? जो बातों से घबरा जायेगा वह कभी भी अपनी मौलिक स्थापना नहीं कर पाएगा। बनी हुई लकीरों पर मत चलो। लीक पर चलना सुरक्षित तो होता है लेकिन उसमें अपनी मौलिकता नहीं होती। अपने पुरुषार्थ से अपने रास्ते ख़ुद बनाओ। कुछ अलग करने की उमंग रखें, तभी आप आगे बढ़ने में सफल हो सकेंगे। देखो कि आलोचना में कौन सी अच्छी बात है, उसे अपना लो, लेकिन अपने संकल्प से पीछे मत हटो। जो आज आलोचना कर रहे हैं, कल वे ही जब आप लक्ष्य हासिल कर लेंगे तो तारीफ करने को तत्पर हो जायेंगे। जब तक कोई चीज लक्ष्य और मंजिल तक नहीं पहुंच पाती है तभी तक उसकी आलोचना होती है और लक्ष्य हासिल होते ही लोग करवट बदल लेते हैं, प्रशंसा करने में जुट जाते हैं। दोस्त दुश्मन और दुश्मन दोस्त हो जाते हैं। आज जो तुम्हें पचास रुपये उधार देने से कतराते हैं, कल वे ही तुम्हें मुकाम पर पहुंचा देख कर लाख रुपया लगाने को तत्पर हो जाते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि अब उनकी पूंजी तो कम-से-कम सुरक्षित ही रहेगी।

आलोचना तो महावीर की भी हुई थी, नहीं तो कानों में कीलें क्यों ठोकी जातीं? आलोचना तो राम की भी हुई थी, नहीं तो सीता जी को वनवास देने की क्या जरूरत थी? जीसस की भी आलोचना हुई थी तभी तो उन्हें सलीब पर चढ़ना पड़ा। आलोचना के कारण ही सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा। मंसूर की आलोचना में उनके हाथ-पांव काट दिये गये। आलोचना से घबराएं नहीं। चलेंगे तो गिरेंगे भी। जो गिरने से डरता है वह कभी चलना नहीं सीख सकता।

दो मित्रों ने संकल्प लिया कि प्रतिवर्ष होने वाली तैराकी प्रतियोगिता में वे भी भाग लेंगे। दोनों को तैरना नहीं आता था। फिर भी संकल्प लिया कि तैरना सीखेंगे और प्रतियोगिता में ज़रूर भाग लेंगे। दो माह बाद जब वे पुनः मिले तो एक ने दूसरे के हालचाल पूछे। पहले ने कहा, 'मैंने बहुत अच्छी तैराकी सीख ली है। ढेर सारे तैराकी के गुर भी सीख लिये हैं। मुझे तो उम्मीद हो गई है कि मैं तैराकी में जीत भी सकता हूं। तुम्हारा क्या चल रहा है?' दूसरे ने कहा, 'मैंने तो अभी तक कुछ शुरू ही नहीं किया है।' 'क्यों?' 'क्योंकि डर लगता है कहीं डूब गया तो?'

जिसे डूबने का डर है वह कभी घर से बाहर नहीं निकल सकता। मन में आशंका रखकर चलने पर बच्चा कभी चलना ही नहीं सीख पाएगा। गिर-गिर कर ही व्यक्ति संभलता है। ठोकर लग-लग कर ही आदमी का निर्माण होता है। कोई घड़ा केवल ऊपर के प्यार के कारण नहीं बनता। एक तरफ प्यार होता है तो दूसरी तरफ थाप होती है, तब कोई घड़ा बनता है। अपने बच्चे को घर का पौधा मत बनाओ। उसे जंगल का वृक्ष बनाओ ताकि उसे पानी न भी मिले तब भी वह अपने बलबूते पर खड़ा रहे। माता-पिता अपने बच्चे को इतना मजबूत बनायें कि वह सर्दी, गर्मी के थपेड़े सहन कर सके। ग़रीबी में रहना पड़े तो रह सके, यदि भाई दगा कर जाये तो उसे सहने का भी जिगर उसके पास हो। पता नहीं चलता, दुनिया में कब किसके साथ क्या हो जाए? बच्चों को आत्मनिर्भर बनायें, ताकि वे अपना काम ख़ुद कर सकें। अपने बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ काम करने की भी शिक्षा दें।

हाथ में अगर तूलिकाएं अच्छी हैं और रंग भी पूरे हैं तो फिर कैनवास भी बड़ा ही रखना होगा। लेकिन जो पहले ही चरण में घबराकर बैठ गया वह जीवन में कुछ नहीं कर सकता। कुछ बनना है तो आलोचनाओं को भी झेलना होगा।

याद रखिए, दुनिया में किसी का अनुयायी होना सामान्य बात है। कोई भी किसी का भी अनुयायी बन सकता है, पर अनुयायी मार्ग का अनुसरण ही कर सकता है, नये मार्ग का निर्माण नहीं कर सकता।

लीक लीक गाड़ी चले, लीक से चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चले, सायर, सिंह, सपूत॥

आप भी आलोचनाओं को परे रखकर आगे बढ़िए। ईश्वर सदा सत्य के साथ है। हाथी को देखकर कुत्ते भौंकते ही हैं। अगर हाथी कुत्तों की परवाह करना शुरू कर दे तो वह अपनी मस्ती से वंचित रह जायेगा। वह चल ही न सकेगा। चुनौतियों का सामना करो। मुसीबत और मुश्किलों का सामना करना सीखिए। प्रकृति परिवर्तनशील है। हर व्यक्ति के जीवन में उतार-चढ़ाव आया ही करते हैं। उसी व्यक्ति का विकास होता है, जो चुनौतियां झेलने में समर्थ होता है। मैं तो मानता हूं कि जिसकी आलोचना न हुई, जिसे चुनौतियां न मिलीं वह व्यक्ति, जीवन में कुछ बन ही नहीं सकता। थपेड़े और ठोकरें खाने से ही इन्सान कुछ बन पाता है। कालिदास को चुनौती मिली, तुलसीदास को भी चुनौती मिली। चन्द्रप्रभ को भी चुनौती मिली।

कालिदास की पत्नी ने व्यंग्य किया था, ताना मारा था कि 'विदुषी महिला का इतना गंवार, अनपढ़ पति! अगर मेरा पति कहलाना चाहते हो तो एक दिन मेरे सामने विद्वान बनकर आओ, तब मैं गौरव से कह सकूंगी कि तुम मेरे पति हो।' कालिदास जो एक गड़रिया था, पत्नी के ताने सुनकर घर से चला जाता है और जब घर लौटता है तो संसार का एक महाकवि बनकर ही लौटता है।

हर हालत में हिम्मत और साहस रखें। हिम्मत से व्यक्ति स्वावलंबी बनता है। हिम्मत से ही पांच पांडव सौ कौरवों से युद्ध करने का साहस कर सके, नहीं तो लोग गली के कुत्ते और घर के चूहे से भी डरते हैं। मुझे बचपन में कुत्तों से बहुत डर लगता था किन्तु अब तो उन्हें प्यार करता हूं। एक दिन मैं छत पर खड़ा था, सामने की छत पर एक कुत्ता था। मैंने सोचा कि बीच में गली है तो कुत्ता मेरे पास तो आ नहीं सकता। इधर से मैं, उधर से कुत्ता मुझे घूरने लगा। हम दोनों बहुत देर तक एक-दूसरे को घूरते रहे। बीच-बीच में वह भौंक भी लेता था, पर कुछ कर न सका। तब मुझे लगा कि जब तक हम डरते रहेंगे, कुत्ते पीछे पड़े रहेंगे। जब निर्भय हो जायेंगे, तो कुत्तों को साइड कर देंगे।

जहां हिम्मत है, वहां चमत्कार है, जहां हिम्मत है वहीं जीवन में विकास की क्रांति है।

हिम्मत न हारिये, प्रभु ना बिसारिये,
हंसते-मुस्कुराते हुए जिंदगी गुजारिये।

एक पल के लिए भी मन में दुर्बलता का, पराजय का, अकर्मण्यता का, असफलता का भाव या विचार न आने दीजिए। यदि आप हीन भावों को मन में जगह देंगे तो ये भी आशा को बाहर धकेल देंगे। दृढ़ निश्चय कीजिये, संकल्प करिये कि आप अपने मन में हीनता की भावना कभी नहीं आने देंगे। आप संकल्प कीजिए कि आप जो करेंगे, वह श्रेष्ठतम होगा। निरन्तर यह विश्वास रखिये कि आपका परिश्रम सफल होकर रहेगा,

इच्छा पूरी होकर रहेगी, आशाओं के फूल खिलकर रहेंगे, आकांक्षाओं के फल मिलकर रहेंगे। प्रयत्न करते जाइये, पूर्ण शक्ति, योग्यता, कुशलता और सामर्थ्य से अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान होकर कार्य करते रहिए, सफलता निश्चय ही आपकी होगी।

आप अपना आत्मविश्वास जुटाएं, जीवन में सफलता पाएं। आशंकाओं के बारे में किसी प्रकार मत सोचिए, उन्हें भुलाने या भगाने की अपेक्षा मन को दूसरी ओर लगा दें। अच्छी प्रेरणास्पद पुस्तकें पढ़ें। घबराइये नहीं, आपसे भी पहले उन लोगों के जीवन में कठिनाइयां आई थीं जो आज सफलता के उच्च शिखरों पर खड़े हैं। साहस के साथ आगे बढ़ते रहिए, निर्भीकतापूर्वक, निश्चिंत होकर। आत्मविश्वास में बड़ा चमत्कार है। यही मनुष्य की वास्तविक शक्ति का भंडार है।

याद रखिए, जीवन में सुख, शांति और सफलता के मंगल गीत तभी गाये जा सकते हैं जब आपका अपने आप पर विश्वास हो। ख़ुद पर होने वाला विश्वास ही अपने जीवन की ताक़त है। अपने आप पर होने वाला विश्वास ही आपको आपकी ओजस्विता का अहसास कराता रहेगा। बग़ैर ओजस्विता के तो इंसान हार की ढलान पर फ़िसलता रहेगा। आप अपने आप को उत्साह, उमंग और ऊर्जा से भरिए और जीवन की सफलता तथा धन्यता के लिए प्रयत्नशील हो जाइए। दुनिया की सारी ख़ुशियां तुम्हारे लिए हैं। 'ख़ुश रहो, हर ख़ुशी है तुम्हारे लिए।'

ख़ुशियों को पाने की सही वज़ह यही है : जीओ शान से, शुरुआत मुस्कान से। आपकी मुस्कान ही आपकी जीवन्तता की पहचान है। ज़िंदे और मुर्दे में यही तो फ़र्क़ है कि मुर्दा लटक सकता है पर ज़िंदा मुस्कुराते हुए मस्तक ऊंचा कर सकता है। अपने जीवन का उपयोग कीजिए, उस हर अवसर का जो आपको सुख, सुकून और ख़ुशियां दे सके। रुड्यार्ड किपलिंग की इन पंक्तियों को सदा याद रखिए—यदि तुम कभी लौटकर न आने वाले इस एक मिनट के साठ सेकेंड सार्थक कर लेते हो तो यह समूची धरा तुम्हारी है; इस धरा पर विद्यमान सभी कुछ तुम्हारा है।

विश्वासपूर्ण ज़िंदगी के लिए, अपने हर आज को सार्थक बनाने के लिए कुछ बातें निवेदन कर रहा हूं, इन्हें अपने जेहन में उतार लें और इनसे प्रेरणा भी लेते रहें—

1. जो हुआ, किसी-न-किसी दृष्टि से अच्छा ही हुआ। जो हो रहा है वह भी अच्छा ही हो रहा है। जो होगा वह भी अच्छा ही होगा।

2. मैं अपने जीवन का सम्मान करूंगा। शरीर से व्यायाम भी करूंगा और इसका पोषण भी। न मैं इसका दुरुपयोग करूंगा और न ही इसकी उपेक्षा।

3. मैं अपने मन-मस्तिष्क की शांति, स्वस्थता और प्रसन्नता पर ध्यान दूंगा। गुस्सा और आवारागर्दी नहीं करूंगा। मस्तिष्क की समृद्धि के लिए कुछ ऐसा भी पढ़ूंगा जिससे मेरे प्रयास और विचार प्रभावशाली हो।

4. आज के दिन मैं अच्छा रहूंगा, अच्छा पहनूंगा, अच्छा व्यवहार करूंगा। धैर्य और विनम्र स्वर में बात करूंगा। औरों की प्रशंसा में उदारता बरतूंगा। दूसरों की कमियों पर टिप्पणी नहीं करूंगा।

5. मैं सुबह उठते ही दैनिक कार्यक्रम शुरू करने से पहले किस घंटे में मुझे क्या करना है यह तय करूंगा। जल्दबाजी और अनिर्णय की स्थिति को टालने के लिए हर कार्य धैर्य और दृढ़ता के साथ करूंगा।

6. आज के दिन मैं आधा घंटा शांति, साधना और आराधना के लिए समर्पित करूंगा। मैं ईश्वर का ध्यान करूंगा ताकि अपने जीवन में कुछ नये अर्थों का भी समावेश किया जा सके।

7. मैं आज सहज प्रसन्न रहूंगा। वातावरण विपरीत बन जाने पर स्वयं पर संयम रखूंगा और पूरे दिन प्रेम तथा सद्व्यवहार का आनंद लूंगा।

आपकी यह सकारात्मकता और रचनात्मकता ही आपको उत्साह और विश्वास से भरी रखेगी। यदि आप अपने 'आज' से ख़ुश नहीं हैं तो दुःखी मत होइए, अपनी मानसिकता बदलिए। जीवन प्रभु का प्रसाद है इसका आनंद लीजिए। अपना रास्ता ख़ुद तलाशिए और ख़ुद ही उस रास्ते के चिराग़ बनिए।

('घर को कैसे स्वर्ग बनाये से' साभार')

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

नींद खुलने के बाद कैसे स्मरणों का प्रवाह चलता है? बीती हुई अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं, राग और द्वेष, हानि और लाभ, मिलन और बिछुड़न, प्रिय और अप्रिय पदार्थों और परिस्थितियों का स्मरण होता है, कि प्रपंच-शून्य स्वरूपस्थिति, कैवल्य एवं निर्वाण का, अद्वैत का, अकेलेपन एवं असंगता का? याद रखो, बीती हुई सारी घटनाएं तथा आगे की कल्पनाएं व्यर्थ हैं। उनका स्मरण भयंकर हानिप्रद है। इस उत्तम समय में कैवल्य का स्मरण ही हितकारी है। संसार का कूड़ा-कचड़ा मन में मत भरो। चित्त शुद्ध, द्वैत-रहित कैवल्य-भाव में जीयो। यही मोक्ष-पथ है, परमानंद एवं परम शांति की साधना है। मेरे साथ कुछ नहीं है। जो साथ दिखता है, वह क्षणिक है और आज-कल में खो जाने वाला है।

* * *

मैं जो वर्तमान में देखता हूं, सुनता हूं, बरतता हूं, और जो प्राणी-पदार्थ तथा परिस्थिति मिलते हैं; यहां तक अपना माना हुआ शरीर मेरे साथ रहने वाले नहीं हैं। सारा प्रतीत क्षणिक प्रवाह है। इसलिए अनात्म वस्तुओं में मेरा स्थिर निवास एवं संबंध नहीं है। मेरा स्थिर निवास और संबंध तो मेरे अपने केवल चेतन स्वरूप में है। उसी में मेरी रति, गति और अनुरक्ति निरंतर होनी चाहिए। दूसरे के सुधार के लिए ही तो सारा कहना-सुनना है और दूसरे सब सुधरने वाले नहीं हैं। तुम्हारी ऐसी कोई ठेकेदारी नहीं है कि तुम दूसरों का सुधार करोगे। जिनका हित कर पाओ, अच्छा है, अन्यथा उनसे दूर और मौन रहो। तुम्हारा अपना कल्याण पूर्णरूप से सम्पन्न रहना चाहिए। असंगता का बोध सब समय बना रहे, ऐसी अखंड साधना चलना चाहिए।

* * *

जब शरीर से लेकर पूरा संसार सब समय व्यर्थ लगने लगता है तब निरंतर मोक्ष में ही स्थिति है। बड़े-बड़े नेता जो मंत्री और प्रधानमंत्री हो गये, वे मरकर मिट्टी में मिल गये। उनकी सारी लौकिक उपलब्धि मिट्टी हो गयी, सदा के लिए छूट गयी। सबका सब कुछ छूट जाता है। अतएव सबकी सारी उपलब्धि व्यर्थ हो जाती है। किंतु मनुष्य का उसमें मोह बना रहने से वह उसमें बंधा रहता है। जिसके मन में पहले से सब व्यर्थ लगता है उसका मोह मिटा रहता है। सब तरफ से मोह का बंधन सर्वथा कटा रहना ही मोक्ष है जो निर्भयपद है।

* * *

केवल एक ही काम है—स्वरूपस्थिति में दृढ़ स्थित रहना। इसके अलावा सब धोखा है। शरीर रहे तक इसकी रक्षा के लिए कुछ खाना-पीना, छादन आदि लेते रहने हैं दवाई की तरह। इसके अलावा न कोई काम है और न कोई धाम है। चाहे जितना ऐश्वर्य मिले, उसका बदल जाना, विनश और छूट जाना पक्का है। अंततः अनंतकाल के लिए मुझे अकेले रहना है, फिर किसकी स्पृहा? किससे राग-द्वेष? अविद्या की पूर्ण निवृत्ति हो जाने पर कोई दुख नहीं रहता। शुभ में भी मोह नहीं, केवल उसका बरताव करते चलना है। जीवन की रहनी ऐसी रखना है कि जिससे निरंतर स्वरूपस्थिति की प्रगाढ़ता बनी रहे। यही जीवन का सर्वोच्च लाभ है। इसी में दुखों का अंत एवं परम शांति है।

* * *

चारों तरफ नज़र डालने पर कहीं कुछ सार नहीं दिखाई देता। देहधारी को जीवन पर्यंत केवल भटकना-ही-भटकना है। ध्यान दो, संसार से तुम्हें धक्के के अलावा क्या मिलता है? अतएव सारी कामनाएं त्यागकर आत्मसंतुष्ट हो जाओ। यही जीवन का सार है। आत्मसंतोष ही लाभ है। शेष सारे सांसारिक लाभ मन के छलावे हैं और उनमें मन को केवल भटकाना है। पानी की धारा की तरह सारी उपलब्धियां निरंतर बहती जाती हैं। उन्हें पकड़ने का गोरखधंधा सब कर रहे हैं और धोखा खा रहे हैं। जो पकड़ में आ ही नहीं सकता, उसी को सब पकड़ने के पीछे पागल हैं। अपने आपको पकड़ लेने वाला कृतार्थ हो जाता है। आत्मा के अलावा आत्मा का कुछ भी नहीं है। इस सच्चाई को समझ लेने वाला नहीं भटकता।

* * *

संसार अपने प्रवाह में चल रहा है। यहां की चमक-दमक जो क्षणभंगुर है, उसी में भूलकर जीव अपने स्वरूप में नहीं स्थित हो पाता। चाहे जितनी चमक-दमक हो, अंततः मिथ्या हो जाती है और इसी मिथ्या में मनुष्य मोहित होकर स्वरूपस्थिति नहीं कर पाता। जो व्यक्ति संसार की सारहीनता, दुखरूपता और विनश्वरता को निरंतर देखता है वह संसार से उदासीन होता है और वही स्वरूप में स्थित होता है। हमारे वश में संसार का कुछ भी नहीं है। हमारे वश में केवल हमारा मन है और यही जीवन की सफलता है। मन स्ववश, समाधि में विश्राम। शरीर चाहे जब बिखर जाये, मैं सदैव अमृत धाम हूं।

* * *

बहुत अच्छे स्तर तक वैराग्य-त्याग होने पर भी मन की आदतों, शंकाओं तथा विकारों के परत-पर-परत रहते हैं जिनके कारण गुरु शिष्यों की सच्चाइयों पर संदेह करता है और शिष्य गुरु की सच्चाई पर संदेह करता है। यह संदेह एवं संशय ऐसा घुन है कि मनुष्य के मन को चालकर रख देता है। सच्चे-हृदय शिष्य पर गुरु संदेह करता है और निर्मल-हृदय गुरु पर शिष्य संदेह करता है। फिर अन्य संसारियों की बात क्या कही जाये? सद्गुरु कबीर ने बहुत अनुभव की बात कही है—"संशय सब जग खंडिया, संशय खंडे न कोय। संशय खंडे सो जना, जो शब्द विवेकी होय।"

जो अपना तथा दूसरे का कल्याण चाहे, वह मन से संशय को एकदम निकाल दे। सब अच्छे हैं। हम अपने मन को सबके लिए शुद्ध रखें।

* * *

जो मनमती और उद्दंड होते हैं, वे स्वतः अलग हो जाते हैं। अवसर देखकर उन्हें अलग करना चाहिए परंतु जो ऐसे न हों, उनकी त्रुटियों को देखकर उन्हें हटाने की चेष्टा गलत है। उनको निर्देश देकर उनकी त्रुटियों को सुधारने की चेष्टा करना चाहिए। जो विनम्र हो, नियमों में चलना चाहता हो और बातों को मानता हो, उसकी त्रुटियों को क्षमाकर उसको सुधारने का निर्देश करना चाहिए। हम अपने को देखें। हमसे भी त्रुटियां होती हैं। क्षमा मांग लो और क्षमा कर दो यही सुधार करने का नियम है। नम्रता से सहन करके समूह को निभाया जा सकता है। सबके स्वभाव, गुण, कर्म तथा योग्यताओं में अंतर है। संसार गुण-दोषमय है। सहन और क्षमा से ही समाज, परिवार का कोई समूह चल सकता है और इसी ढर्रे पर व्यक्तिगत कल्याण है।

* * *

सब कुछ परिवर्तनशील है। मेरे साथ कुछ रहने वाला नहीं है। इसलिए मिली हुई वस्तुओं और व्यक्तियों की ममता-अहंता न करें। आज-कल में देह नहीं रह जायेगी। फिर क्या अपना होगा? मेरा तो मैं हूं जो शुद्ध चेतन है। वह सारी जड़ प्रकृति-कारण और उसकी विकृति कार्य से अत्यंत परे है। फिर मेरा क्या है? जीवनपर्यंत मनुष्य जिसको अपना मानता है, वह जड़-प्रकृति का विकृत-कार्य है जो बनता और बिगड़ता है। वह हमारे साथ रहने वाला नहीं है। अतएव समस्त मायावी प्रपंच—प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों का मोह त्यागकर स्वस्वरूप में शांत रहना जीवन की सच्ची सफलता है।

* * *

लोग कहते हैं, अतृप्त आत्मा शरीर छोड़ देने के बाद भूत-प्रेत बनकर भटकते हैं। भूत-प्रेत तो काल्पनिक हैं, परंतु यह सच है कि अतृप्त आत्मा देह धरकर भटकता है। अतृप्ति ही भटकना है। असंतोष एवं तृष्णा में पड़ा रहना ही भटकना है। बीड़ी पीने का आदती बीड़ी के विषय में अतृप्त रहता है। वह बराबर बीड़ी पी-पीकर उसके विषय में अतृप्त ही रहता है। जब उसको बीड़ी पीने की आदत नहीं थी, वह उसके विषय में अतृप्त नहीं था। यही दशा सभी विषयों की है। तृष्णा-रहित रहकर ही परम तृप्ति का अनुभव हो सकता है। जीव का स्वरूप ही स्वतः परम तृप्त है। वह तो अपने को न पहचान कर ही अतृप्त बना भटकता है। शब्दादि पांचों विषयों की तृष्णा छोड़कर जीव स्वतः तृप्त है।

संसार विदेश है, क्योंकि यह अनात्म है। आत्मा ही स्वदेश है, जहां बसने योग्य है।

आत्मज्ञान परिचय बिना

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

धन पद विद्या मान बल, भले हो दूना दून।
आत्मज्ञान परिचय बिना, जीवन सूनासून॥ 1॥

दुनियावी रंगमंच पर, खेल लेहु निज खेल।
अनचाहे चलना तुझे, मुफ्त मौत की रेल॥ 2॥

गहना सद्गुण का पहन, स्वच्छ चूनरी धार।
करो गमन प्रिय मिलन का, करेंगे झट स्वीकार॥ 3॥

बड़े-बड़े नख अंगुठी, हैं गलीज भण्डार।
इन का कभी न शौकिए, विनती करूं हजार॥ 4॥

बच्चा पैदा होन पै, बजने लगती थाल।
लख ऐसे बर्ताव को, सदा विहंसता काल॥ 5॥

कण्ठे में कण्ठा रहा, भूल भ्रम विलखाय।
आली का संकेत पा, पाली तब मुस्काय॥ 6॥

निर्दय दसनन मध्य में, ज्यों जिह्वा सुकुमारि।
त्यों दुर्जन के बीच में, रहिए बहुत सम्भारि॥ 7॥

योगी योग में अटकते, ज्ञानी ज्ञान के बीच।
जो निज में अटका तरा, जन्म-मरण का कीच॥ 8॥

धन अर्जन में यों लगे, रात-दिवस किए एक।
क्या हूँ क्या करना हमें, किए न कभा विवेक॥ 9॥

विविध किस्म के प्रेम हैं, बहुत से यारी यार।
जग में मिलना है कठिन, भाई-बहन का प्यार॥10॥

सुन्दर रूप अनूप हो, या कुरूप का खेल।
अनि वारि मिट्टी पवन, नभ का ही है मेल॥11॥

हे बादल क्या यही है, दानी दान निशान।
चातक मांगे स्वाति जल, तूँ दे घोर पषान॥ 12॥

अरे पथिक! क्यों विटमता, माया का बाजार।
अनासक्त हो क्रय करो, चलाचली संसार॥13॥

असि की धार ज्यों शीश को, करे खण्ड का खण्ड।
त्यों ही सत्य की धार से, कटे ढोंग पाखण्ड॥14॥

मँहगा सौदा कबीर का, चाहे तो ले कोय।
पड़ा रहे अन्तर नहीं, बासी कभी न होय॥15॥

अब मत बांटो इंसान को

रचयिता—हेमंत हरिलाल साहू

मंदिर मस्जिद बांट लिया
अब मत बांटो इंसान को
खाना पीना शौच सोना,
इन सबकी होती है सेट।
जहां शांति सुमति सुचिता मिले,
उस स्थल को क्यों करते अपसेट।
नियत जगह पर कर लो साथी,
पूजा - पाठ - अजान को॥ 1॥

मंदिर बने मस्जिद बने
बना लो गिरिजाघर गुरुद्वारा
मकसद तो सभी का एक है
आपस में होवे भाईचारा
नहीं पसंद ये छीना झपटी
राम कृष्ण रहमान को॥ 2॥

बन्द करो ये मजहबी खेला
कर लो राष्ट्रहित की बात
एक जमी है एक राष्ट्र है
छोड़ो सब दंगा फसाद
एक दूजे पर कीचड़ उछालकर
मत खोओ अपनी शान को॥ 3॥

मानव वो जो मानवता धारे
सोच समझ कर पग धरना
जो स्वयं दुखी हो वो क्या जाने
गैरों की पीड़ा हरना
गर कुछ ना दे सको दुनिया वालों को
पर मीठी दे जुबान को॥ 4॥

जिस हेतु मिला यह सुन्दर नर तन
वो काम जरा तू करता चल
छोड़ टेक दुनियादारी की
हो जग से सजग संवरता चल
'हेमंत' दिल में खुदा दिल ही में राम
बस त्याग करो अभिमान को॥ 5॥

मध्यमार्गी बने

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

यह मानव स्वभाव है कि वह हर मामले में दूसरों से आगे रहना चाहता है। हमेशा उसके मन में प्रतिस्पर्धा की भावना बनी रहती है। यह भावना जब सकारात्मक दिशा में होती है तब मनुष्य निरंतर प्रगति करता है, और सफलता उसके कदम चूमती है। लेकिन जब प्रतिस्पर्धा की भावना नकारात्मक दिशा में चलती है, तब वह ईर्ष्या का रूप ले लेती है, जिसका परिणाम औरों के साथ स्वयं के लिए भी घातक होता है। यह संभव ही नहीं है कि हर इंसान सर्वोच्च स्थिति में पहुंचे, मगर वह चाहे तो स्वयं को एक सम्मानजनक स्थिति में जरूर प्रतिष्ठित कर सकता है।

जीवन के हर क्षेत्र में हमें तीन श्रेणियां दिखाई देती हैं। निम्न, उच्च और मध्य। यदि हम अपने सामाजिक परिदृश्य पर नजर डालें तो पायेंगे कि निम्न श्रेणी के लोगों का जीवन भौतिक संसाधनों की दृष्टि से अभावों से भरा हुआ है। उनके पास जीवन की मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अच्छी शिक्षा और अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना बेमानी है। जब हमारे समाज का आधारस्तंभ श्रमिक वर्ग ही मूलभूत सुविधाओं से वंचित है तो हमारी प्रगति अधूरी है। हम चाहे जितना मशीनीकरण कर लें, बिना श्रमशक्ति के हमारा काम नहीं चल सकता।

उच्च श्रेणी के लोगों के पास जीवन जीने के सभी साधन जरूरत से ज्यादा हैं। उन्हें किसी चीज की कोई कमी नहीं है। बल्कि उनका जीवन विलासिता से परिपूर्ण है। कहा जाता है कि हमारे देश की संपूर्ण पूंजी का ज्यादा हिस्सा कुछ ही पूंजीपतियों के पास है। जबकि प्रकृति के सभी संसाधनों पर इस दुनिया के हर प्राणी का अधिकार है और उसे जीवन जीने की सहूलियतें मिलनी ही चाहिए। निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की अपेक्षा मध्य वर्ग के लोगों का जीवन अपेक्षाकृत अधिक संतोषप्रद दिखाई देता है। यद्यपि इस वर्ग के लोगों को अपनी यथास्थिति बनाये रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है। फिर भी उन्हें इस बात की तसल्ली रहती है कि उनके पास अधिक नहीं है तो कम भी नहीं है।

जब हम अपने आसपास के परिवेश पर नजर डालते हैं तो बहुत साफ दिखाई देता है कि चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो मध्यम स्थिति ही हमारे लिए सबसे अच्छी होती है। प्रकृति को ही ले लें, जो हमारे जीवन का मूलाधार है। हवा, पानी, ठंडी, गर्मी इनकी अधिकता हो या फिर इनकी कमी, दोनों ही स्थितियों में हमारा जीवन संकट में पड़ जाता है। लेकिन जब यह सामान्य स्थिति में होती हैं तब हमारी जिंदगी भी सहज रूप से व्यतीत होती है।

कुछ लोग समाज में अपना व्यवहार इस कदर बढ़ा लेते हैं कि बाद में उन्हें निभाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप जहां संबंधों में मधुरता होनी चाहिए, वहां खटास पैदा हो जाती है। लोगों से न अति निकटता अच्छी है, न अति दूरी। न बहुत विश्वास अच्छा, न अनावश्यक संदेह। बहुत सोच-समझकर बीच का रास्ता चुनें। यही हाल काम-धंधा या व्यापार-व्यवसाय का है। इनका बहुत बढ़ जाना भी हमारे लिए परेशानी का कारण बन जाता है। जीवन निर्वाह के लिए इंसान को कुछ न कुछ करना ही पड़ता है लेकिन इतनी व्यस्तता भी अच्छी नहीं कि हमें खाने-पीने को भी फुर्सत न मिले। काम उतना ही अच्छा है जितने में हमारी जिंदगी की जरूरतें आसानी से पूरी हो जायें। अर्थात न एकदम निठल्ला बैठें, न इतना काम करें कि चैन से जी भी न सकें।

हमारे दैनिक जीवन के अनुभव से भी इसी कथन की पुष्टि होती है। स्वाद के चक्कर में ज्यादा खा लेते हैं तो तबियत खराब हो जाती है। एकदम कम खाया तो शरीर कमजोर होने लगता है। जो बहुत बोलता है उसे बड़बोला कहा जाता है। और लोग उसकी बातों को गंभीरता से नहीं लेते। हमेशा चुप रहने वाले को मौनी

लाभदायक ही नहीं प्रसन्नतादायक भी होता है लोगों की भावनाओं का सम्मान करना

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

एक साधु किसी गांव से होकर गुज़र रहा था। उसने एक दरवाज़े पर दस्तक दी। एक महिला ने दरवाज़ा खोला। उसने दरवाज़ा खोलने वाली महिला से कहा कि उसका पेट खराब है अगर थोड़ी-सी खिचड़ी मिल जाए तो बड़ा उपकार होगा। महिला ने कहा कि बाबा! आप थोड़ी देर बैठो मैं अभी खिचड़ी बना देती हूं। महिला ने फौरन चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ा दी। बाबा वहीं पास में बैठ गया। बाबा ने देखा कि घर के अंदर एक भैंस बंधी हुई थी जो काफी मोटी-ताजी और सुंदर थी। साधु पहले तो काफी देर तक कुछ सोचता रहा और फिर महिला से कहा कि तुम्हारी भैंस तो बहुत अच्छी और मोटी-ताज़ी है। यह दूध भी खूब देती होगी। महिला ने कहा कि बाबा जी! आपके आशीर्वाद से यह अच्छा दूध देती है। उसके बाद बाबा ने कहा कि माई! तुम्हारे घर का दरवाज़ा बहुत छोटा है। यदि यह भैंस मर जाये तो इसे बाहर कैसे निकालोगे? बाबा के मुंह से भैंस के मरने की बात सुनकर महिला आगबबूला हो गई।

उस महिला ने चूल्हे पर चढ़ी खिचड़ी की पतीली उतारी और जैसी भी अधपकी खिचड़ी बनी थी साधु के अंगोछे पर पलट दी और उसे बुरा-भला कहते हुए वहां से रवाना कर दिया। साधु खिचड़ी को अपने अंगोछे में लटकाए हुए जा रहा था। अंगोछे में बंधी हुई अधपकी खिचड़ी से पानी टपक रहा था। लोगों ने साधु से पूछा कि बाबा, यह अंगोछे में से क्या टपक रहा है तो उसने जवाब दिया, "यह मेरी ज़बान का रस टपक रहा है।" अपनी ज़बान का हम जैसा इस्तेमाल करेंगे हमें वैसा ही परिणाम भुगतना पड़ेगा इसमें संदेह नहीं। बातचीत में संयम और शिष्टाचार अनिवार्य है। हमें कड़वी बात कहने और कठोर लहजे में कहने से ही नहीं बचना चाहिए अपितु अव्यावहारिक एवं किसी को कष्ट पहुंचाने वाली बात कहने से भी बचना चाहिए। कहा गया है कि तलवार के घाव भर जाते हैं, बातों के घाव नहीं भरते। जब यह हरे होते हैं तो अनर्थ कर डालते हैं।

अपनी अनर्गल बातों के द्वारा कुछ लोग किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाकर हमेशा के लिए शत्रुता मोल ले लेते हैं अथवा संबंधों को खराब कर लेते हैं। कुछ लोग बड़े मुंहफट होते हैं। वे मुंहफट होने को स्पष्टवादिता अथवा बहादुरी समझते हैं। स्पष्टवादिता का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि हम दूसरों का दिल दुखाएं। इसका यह अर्थ भी नहीं कि हम किसी की झूठी प्रशंसा या चापलूसी में ही लगे रहें। यह किसी भी तरह से ठीक नहीं है लेकिन मामूली बातों को लेकर किसी का दिल दुखाने वाली बात कहना बिलकुल भी ठीक नहीं। जो लोग बातचीत करने का सही तरीका जानते हैं वे ही लोगों का स्नेह, सम्मान और सहयोग प्राप्त कर पाते हैं। जीवन में किसी भी प्रकार की सफलता के लिए लोगों का स्नेह, सम्मान और सहयोग पाना सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। यदि हम मन से किसी का अनिष्ट अथवा बुरा न चाहते हुए भी लोगों से ऐसी बात करेंगे जो उनको अच्छी न लगे तो भी वे हमें कभी

या गूंगे की संज्ञा दी जाती है। अतः थोड़ा बोलें और थोड़ा सुनें भी। संत कबीर ने इस बात को अपनी एक साखी में बहुत खूबसूरत अंदाज में व्यक्त किया है—

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥

तात्पर्य यह कि न बहुत सुख अच्छा है, न बहुत दुख। दोनों के बीच से होकर गुजरती जिंदगी ही सबसे अच्छी है। अतः हमें मध्यमार्गी होकर जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

भी बरदाश्त नहीं करेंगे। किसी भी सूरत में अव्यावहारिक- अनर्गल बातें करना ठीक नहीं।

यह स्वाभाविक है कि हम अपने प्रिय व्यक्तियों के विषय में ही नहीं अपनी प्रिय वस्तुओं के बारे में भी कोई ऐसी बात नहीं सुनना चाहेंगे जो हमें अच्छी न लगे चाहे उसमें कितनी भी सच्चाई क्यों न हो। जब हम अप्रिय होने पर सच्ची बात भी नहीं सुनना चाहते तो अव्यावहारिक-अनर्गल बात कैसे सुन पाएंगे? बातचीत के दौरान इस बात का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। कुछ लोग होते हैं जो किसी से मिलने पर पहले तो उसे सिर से पैर तक कई बार घूरकर देखेंगे और फिर वही दिल दुखाने वाली बेसिरपैर की बातें शुरू कर देंगे— जैसे अरे भई, आपके बाल तो गये। आप तो गंजे हो गये। आप तो बुड्ढे लगने लगे। आपका चेहरा तो झुर्रियों से भर गया। कोई व्यक्ति तेज़ गरमी में सीढ़ियां चढ़कर चौथी मंज़िल पर आये तो थकान स्वाभाविक है। ऐसे में उसको यह कहना कि भई, आप तो गये काम से। आपका कोलेस्ट्रॉल तो बहुत ज्यादा बढ़ा हुआ है। डॉक्टर को दिखाओ फ़ौरन।

कहीं देर से फ़र्श पर बैठे हैं तो उठते वक्त थोड़ी परेशानी हो सकती है। चलने में कुछ कदम लड़खड़ा सकते हैं। ऐसे में किसी को यह कहना कि आपको आर्थराइटिस अथवा अन्य कोई रोग हो गया है। ऐसे लोगों को कौन पसंद करेगा? ऐसे लोगों की कमी नहीं जो किसी की बीमारी का समाचार पाकर सीधे पूछने लगते हैं, "कहीं मर-वर तो नहीं जायेगा?" यह अशिष्टता ही नहीं धूर्तता व संवेदनहीनता भी है। हमें किसी भी स्थिति में ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए जिससे सामने वाला पीड़ित, अपमानित अथवा हतोत्साह हो अपितु ऐसी बातें कहनी चाहिए जिसे उसका उत्साह, आत्मविश्वास व आत्मसम्मान न केवल अक्षुण्ण बना रहे अपितु उसे समस्याओं से जूझने के लिए संबल भी मिले।

यदि हम किसी बीमार व्यक्ति से मिलने जायें तो यह कहना कि आप पहले से बहुत अच्छे दिख रहे हो उसको प्रसन्नता प्रदान करेगा और प्रसन्नता के कारण उसकी स्थिति में अपेक्षाकृत तीव्र गति से सुधार होगा। यदि किसी बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्य को लेकर हम कोई नकारात्मक टिप्पणी करते हैं तो उसका उत्साह और आत्मविश्वास कमज़ोर पड़ जायेगा। उसके निराश हो जाने से उसकी रोगमुक्ति में बाधा उत्पन्न हो जायेगी। एक सज्जन अपने बच्चे की पढ़ाई को लेकर बड़े चिंतित थे। एक परिचित से इस विषय पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत के दौरान परिचित ने एकदम से कहा, "ऐसे तो बच्चा फेल हो जायेगा और मां-बाप के मुंह पर कालिख पुत जायेगी।" बच्चे का पिता तो जैसे आसमान से ज़मीन पर ही आ गिरा। स्थिति ऐसी नहीं थी। बच्चा एक मेधावी विद्यार्थी था। चिंता उसके अच्छे अंकों और आगे प्रवेश को लेकर थी। हमें समस्याओं के केवल नकारात्मक पक्ष पर ही चर्चा नहीं करनी चाहिए।

किसी का दिल दुखाने अथवा किसी को नीचा दिखाने का प्रयास हमारे अपने कमीनेपन को ही उजागर करता है। कहते हैं चेहरा हमारे मन के भावों का दर्पण होता है। हमारे मन में जब भी किसी के प्रति अवमानना अथवा धूर्तता का भाव आता है तो हमारे शरीर में कुछ ऐसे रसायनों का उत्सर्जन होता है जिनसे हमारे चेहरे की मांसपेशियों में एक विशेष प्रकार का खिंचाव उत्पन्न हो जाता है जिससे चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंदर के भाव झलकने लगते हैं। इस धूर्तता व क्रूरता को न केवल बातचीत में ही साफ तौर से अनुभव किया जा सकता है अपितु चेहरे पर भी देखा जा सकता है। उपेक्षा, धूर्तता अथवा कमीनेपन के भाव चेहरे पर प्रकट होकर हमारे चेहरे की सौम्यता को नष्ट कर डालते हैं। उसे अनाकर्षक बना देते हैं। लोग हमसे दूर होते चले जाते हैं। ऐसे व्यवहार से हर हाल में बचना चाहिए। लोगों से अच्छे संबंध बनाये रखना है और उनका दिल जीतना है तो हमें अपनी बातचीत में शिष्टाचार व विनम्रता के साथ-साथ उत्साहवर्धक व प्रेरणास्पद शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए। जिन बातों से कोई स्वयं को प्रेरित व सम्मानित समझे उन बातों से कहने वाला और सुनने वाला दोनों ही भरपूर आनंद प्राप्त करते हैं। ❑

राम क्यों नहीं मिलता?

सद्गुरु कबीर की एक साखी है—

द्वारे तेरे राम जी, मिलहु कबीरा मोहि।
तैं तो सब में मिलि रहा, मैं न मिलूँगा तोहि॥

(बीजक, सा. 258)

किसी के दरवाजे पर राम गये और कहा—भाई! मैं बड़ी दूर से चलकर तुम्हारे दरवाजे पर आ गया हूं, अब तुम घर से बाहर निकलो और आकर मुझसे मिलो। उस व्यक्ति ने कहा—महाराज! जब इतनी दूर से चलकर दरवाजे तक आ ही गये हैं तो थोड़ी और कृपा करें, मकान के भीतर आ जायें और मुझसे मिल लें। मेरे पास फुर्सत नहीं है कि मैं मकान के बाहर आकर आपसे मिलूं! तब राम ने कहा—भाई देखो! मैं तुम्हारे दरवाजे तक आ गया, यह बड़ी बात हो गयी। अब आगे तुम यह सोचो कि घर के भीतर आकर मैं तुमसे मिलूं तो यह संभव नहीं है। क्योंकि तुम तो सब में मिले हुए हो। अपने मन को पता नहीं कहां-कहां उलझाये हुए हो और जब तक तुम अपने मन को बाहर से समेटकर मुझसे नहीं जोड़ोगे, मुझसे नहीं मिलोगे तब तक मैं तुमसे मिल नहीं सकता।

यह कहने का एक तरीका है। बाहर कोई ऐसा लोक नहीं है जहां से चलकर राम दरवाजे पर आते हों या आप यह सोचें कि राम जी अयोध्या में रहते हैं। वे अयोध्या से चलकर हमारे दरवाजे तक आयें और हमसे मिलें और हमारा बेड़ा पार कर दें तो यह भी होने वाला नहीं है।

राम अयोध्या में बहुत पहले हुए हैं। अब वहां पर जाकर आप राम से मिलना चाहें, राम को खोजना चाहें, तो आपकी आशा पूरी नहीं होगी। यदि राम अयोध्या में होते तो बाहर के लोगों को वहां जाकर लड़ने न देते। राम तो घट-घट में बैठे हुए हैं। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

सब घट मेरा साइयां, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय॥

मेरा जो स्वामी है, मेरा जो राम है, परमात्मा है, वह तो सभी घटों में बैठा हुआ है। कोई ऐसा घट नहीं है, कोई ऐसा दिल नहीं है जिसमें राम का निवास न होता हो, लेकिन उस राम को हम जान नहीं पाते। दुनियादारी में डूबे हुए होते हैं, इसलिए राम हृदय में विराजमान होते हुए भी उसे दुनिया में खोजते रहते हैं।

रमे निरंतर आत्मा, सब घट आठों याम।
याही से संतन धरा, राम तासु का नाम॥

सभी घटों में यह आत्म तत्त्व निरंतर आठों पहर चौबीसों घण्टे रमण करता रहता है। इसलिए इस आत्मा को, चेतन-जीव को संत लोग राम कहते हैं। राम को कहीं बाहर खोजना नहीं है। बाहर खोजकर राम मिलेगा भी नहीं। बाहर खोजकर माया मिलेगी। बाहर से जो चीज मिलती है वह माया होती है, क्योंकि जो चीज मिलती है वह छूट जाती है। जो मिले और छूटे वही माया है। राम तो कभी बिछुड़ा ही नहीं है। हमारा परमात्मा, हमारा मोक्ष हमसे कभी अलग हुआ ही नहीं है। जो अलग ही नहीं हुआ है, बिछुड़ा ही नहीं है उसे खोजना और पाना क्या है? उससे मिलना क्या है? उसकी याद करना है।

हमारा मन चारों तरफ दुनिया में दौड़ रहा है। उस दौड़ को खत्म कर देना है, मन को समेट लेना है और समेटकर आत्मस्थित हो जाना है, बस राम मिल गया। राम को पाना नहीं है राम नित्य मिला हुआ है। राम को मिलने में हमारे दिल की जो वासना है वह बाधक है। हमारे दिल की जो दुविधा है, अविद्या-अज्ञान का जो परदा है उस परदे को फाड़कर फेंक देना है, परदा को हटा देना है, बस राम मिला-मिलाया है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—घूंघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।

कोई युवती अपने पति से मिलना चाहे परंतु मुख पर जो घूंघट डाल रखी है उस घूंघट को न हटाये तब अपने पति के दर्शन कैसे कर सकती है। ऐसे ही हमारी जो मनोवृत्ति है वह राम को, परमात्मा को बाहर खोजती है। कबीर साहेब कहते हैं—हे मनोवृत्ति रूपी दुल्हन! तू

राम को, परमात्मा को बाहर कहां खोजती है। यह घूंघट का परदा जो चेहरे पर डाल रखी है उसे हटा दे। यहां घूंघट है अविद्या, वासना, सांसारिकता एवं राग-रंग का मोह।

हर आदमी का मन राग-रंग में उलझा हुआ है। कहीं राग-रंग की बात, तड़क-भड़क की बात सुनाई पड़ जाये, दिखाई पड़ जाये तो मन तुरंत भाग जाता है। पूरी दुनिया का मन राग-रंग में फंसा है। इसीलिए किसी कवि ने कहा है—

राग रंग में दुनिया रीझे, चटक मटक में नारी।
भाव भक्ति में साधू रीझे, तीनों निपट अनारी॥

यह राग रंग का मोह, राग-रंग की आसक्ति राम से मिलने में बाधक है। लोग राग-रंग एवं दुनिया के मोह का त्याग करना चाहते नहीं हैं तो राम कैसे मिले? राम को पाना नहीं है क्योंकि राम बिछुड़ा नहीं है। राम तो नित्य प्राप्त है।

दुनिया में हर चीज बिछुड़ सकती है, हर चीज बिगड़ सकती है लेकिन राम न बिछुड़ सकता है न बिगड़ सकता है, क्योंकि वह अविनाशी है और वह हमारा अपना आपा है। इसलिए सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा राम।' (बीजक, शब्द 97) राम को बाहर मत खोजो, परमात्मा को बाहर मत ढूंढ़ो। परमात्मा मंदिर और मस्जिद में नहीं है। परमात्मा तो आपके दिल में हैं। मंदिर-मस्जिद तो एक प्रतीक है, उपासना स्थल है। वहां लोग जाकर पूजा करते हैं, वंदना करते हैं तो मन को थोड़ी शांति मिलती है, थोड़ा संतोष मिलता है। उनकी भी उपयोगिता है। आप मंदिर जाते हों तो जायें लेकिन यह समझें कि बाहर के मंदिर में आपको भगवान नहीं मिलेगा। भगवान मिलेगा तो हृदय-मंदिर में।

अपने हृदय-मंदिर को साफ करें। जब तक हृदय-मंदिर साफ नहीं होगा, बाहर के मंदिर की कितनी भी सफाई करते रहें राम विराजमान नहीं होगा। बाहर के मंदिर में कितना भी दीपक जलाते रहें, राम का आगमन नहीं होगा, किन्तु अपने हृदय के मंदिर में ज्ञान का दीपक जलायें राम का आगमन हो जायेगा। किन्तु हृदय-मंदिर में तो अज्ञान का अंधकार छाया हुआ है। जहां अज्ञान का अंधकार छाया हुआ है वहां राम के दर्शन होंगे कैसे?

एक कहानी कही जाती है। कहानी बातों को समझाने के लिए होती है। कहते हैं कि एक बार अंधकार ब्रह्मा के पास गया और प्रणाम करके बैठा तो ब्रह्मा ने पूछा—कहो अंधकार! कुशल-मंगल तो है न? उसने कहा—भगवन! आप कुशल-मंगल की बात कहते हैं। कुशलता कहां है? एक क्षण भी आराम करने का अवसर नहीं मिलता है। चौबीसों घण्टे भागते ही रहना पड़ता है। एक क्षण भी विश्राम करने का अवसर न मिले तो कुशलता कहां है? ब्रह्मा ने पूछा—ऐसा क्यों? तुम्हें विश्राम का अवसर क्यों नहीं मिलता? तुम रात-दिन भागते क्यों रहते हो? अंधकार ने कहा—जैसे ही मैं कहीं आराम करने को सोचता हूं वैसे ही वहां सूरज पहुंच जाता है और मुझे खदेड़ देता है। पता नहीं मैंने सूरज का क्या बिगाड़ा है कि वह मुझे आराम करने ही नहीं देता है। आप सूरज को समझा दें। इतनी बड़ी दुनिया है इसमें वे भी रहें और मैं भी रहूं। ब्रह्मा ने कहा—ठीक है। अभी सूरज मेरे पास आयेगा तो मैं उसे समझा दूंगा। अंधकार कुछ देर बैठा और चला गया।

अंधकार के जाने के एक घण्टा बाद सूरज आया और प्रणाम करके बैठा। बातचीत होने लगी तो ब्रह्मा ने सूरज से कहा—क्यों भाई सूरज! दुनिया बहुत बड़ी है, सबको रहने के लिए जगह है। इसमें तुम भी रहो और दूसरे को भी रहने दो। तुम अंधकार को परेशान क्यों करते हो? सूरज ने कहा—अंधकार को परेशान! उससे तो मेरी मुलाकात ही नहीं हुई है आज तक। जब मुलाकात ही नहीं हुई है तो मैं परेशान कैसे करूंगा उसको? लेकिन आप कहते हैं कि मैं अंधकार को परेशान करता हूं तो भूल-चूक हो गई होगी। भगवन! ऐसा करें, अंधकार को मेरे सामने बुला दीजिए मैं उससे क्षमा मांग लूंगा। कोई रास्ता है अंधकार को सूरज के सामने बुलाने का? कोई रास्ता नहीं है। या तो अंधकार रहेगा या तो फिर सूरज रहेगा। दोनों का आमना-सामना नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार हृदय में या तो संसार की वासना रहेगी या फिर राम रहेगा। आप रखना किसको चाहते हैं? संसार की वासना रहेगी तो कभी शांति नहीं मिलेगी। दुख पर दुख, चिंता पर चिंता, शिकायत एवं शोक का अनुभव पूरा जीवन करते रहना पड़ेगा। और यदि संसार की वासना को निकालकर हृदय में राम को विराजमान कर दें तो सारा दुख, सारी चिंता, सारी शिकायत, सारी पीड़ा समाप्त हो जायेगी।

संसार में हैं तो संसार का काम करें। यह नहीं कहा जा रहा है कि संसार का काम करना बन्द कर दें। जहां जो हैं पूरी मुस्तैदी से तत्पर होकर काम करें। लेकिन काम करना अलग है और मन में संसार की वासना रखना अलग है। संसार में रहें लेकिन मन में सांसारिकता को न आने दें। यह शरीर ही संसार है। संसार में शरीर का जन्म हुआ है, संसार में शरीर का पालन-पोषण हो रहा है, संसार में शरीर जी रहा है तो संसार से भागकर कहां जायेंगे। संसार से नहीं भागना है। भागना है सांसारिकता से। सांसारिकता का अर्थ है अविद्या, मोह, आसक्ति, कहीं अपने मन को बांध लेना, कहीं अपने मन को चिपका लेना कि इसके बिना तो मैं जीवित नहीं रहूंगा। किसी को एक दिन नहीं देखे तो अत्यंत व्याकुल हो गये, यही आसक्ति है और यह आसक्ति पीड़ा का कारण बनती है। यही आसक्ति भवव्याधि का कारण बनती है।

घर-गृहस्थी का जो काम है वह उचित ढंग से करते रहें। उसके लिए मनाही नहीं है। मनाही है सांसारिकता में उलझने के लिए। संत भी तो संसार में रहते हैं। जितने संत हुए हैं दुनिया में वे भी इसी संसार में रहे हैं किन्तु संसार में रहते हुए भी वे सांसारिकता से-आसक्ति से मुक्त रहे हैं।

एक बात का ख्याल रखें कि जितने बड़े संत दुनिया में हुए हैं वे किसी मत और संप्रदाय के नहीं थे। हमने भले ही उन संतों को बांट लिया हो लेकिन उन्होंने कभी अपने आपको बांटा नहीं।

जैन कहते हैं महावीर स्वामी हमारे हैं, बौद्ध कहते हैं बुद्ध हमारे हैं, कबीरपंथी कहते हैं कबीर हमारे हैं, किन्तु बौद्ध, जैन, कबीरपंथी का या किसी और का लेबल लगाने से कुछ नहीं होगा। वस्तुतः जो महावीर, बुद्ध, कबीर के विचारों को समझते हैं वे उनके हैं। इसी प्रकार अन्य सभी महापुरुषों की बात है। लेबल लगाने से काम नहीं बनेगा, लेबल बदलने से भी काम नहीं बनेगा। काम बनेगा ज्ञान का आचरण करने से।

दुनिया में जितने भी महान संत हुए हैं वे दुनिया में घूम-घूमकर ज्ञान का प्रचार करते रहे, सत्य का संदेश देते रहे। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

मैं रोवों यह जगत को, मोको रोवे न कोय।
मोको रोवे सो जना, जो शब्द विवेकी होय॥

(बीजक, साखी 188)

मैं इस संसार के कल्याण के लिए रोता हूं। कबीर साहेब यह नहीं कहते कि मैं अपने भक्तों के लिए रोता हूं। वे कहते हैं मैं संसार के कल्याण के लिए रोता हूं। बुद्ध हों, महावीर हों, ईसा हों, शंकाराचार्य हों, दयानंद हों, विवेकानंद हों या अन्य और महापुरुष हुए हों उन्होंने कभी बांटा नहीं है। वे पूरी मानवता को लक्ष्य में रखते हुए मानवता का प्रचार किये।

जैसे सूरज उदित होता है तो सूरज का प्रकाश सबके लिए होता है। क्या सूरज कभी यह कहता है कि मैं तो हिन्दुओं के घर में प्रकाश करूंगा, मुसलमानों के घर में प्रकाश नहीं करूंगा। या मुसलमानों के घर में प्रकाश करूंगा, हिन्दुओं के घर में प्रकाश नहीं करूंगा। पानी बरसता है तो सबके लिए बरसता है, हवा चलती है तो सबके लिए चलती है। ऐसे ही दुनिया में जितने भी संत हुए हैं उन्होंने अपने ज्ञान का प्रकाश मानव मात्र के लिए फैलाया है। हम उदारतापूर्वक उनकी वाणियों को समझने का प्रयास करें।

कबीर साहेब कहते हैं कि राम दरवाजे पर आकर पुकारते हैं कि भाई! मैं तुम्हारे दरवाजे पर आ गया हूं, अब तुम अपना मोह का जो घरौंदा बना रखे हो उस घरौंदा से निकलकर बाहर आओ।

हर आदमी का एक घरौंदा है। एक बाहर का घरौंदा और एक भीतर का घरौंदा। घरौंदा का अर्थ है मकान।

बाहर का मकान सबका अलग-अलग है। बाहर का मकान होता है जीवन निर्वाह के लिए, ठण्डी-गरमी निवारण के लिए और दिन भर काम करने के बाद रात में आकर विश्राम करने के लिए। लेकिन बाहर का जो मकान है वह किसी को बांधता नहीं है। बांधता है भीतर का मकान। लोगों ने अपने-अपने भीतर अलग-अलग मकान बना लिया है।

एक घर में छह लोग रहते हैं। बाहर से देखने पर उन छहों का एक ही मकान है, एक ही घर है लेकिन भीतर से उन छहों का घर अलग-अलग है क्योंकि छहों का मन अलग-अलग जगह फंसा हुआ है, छहों के मन की दुनिया अलग-अलग है। किसी के मन के संस्कार किसी प्रकार हैं तो किसी के मन के संस्कार किसी प्रकार हैं। यह जो संस्कार है, यह जो मन की अविद्या है यह ऐसा मकान बनाती है कि उस मकान से लोग अपने आपको बाहर निकाल नहीं पाते हैं। उसी में घुट-घुटकर पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं, शांति-सुख का अनुभव नहीं कर पाते। उस घरौंदे से अपने को बाहर करना होगा। वह घरौंदा है अहंकार का, मोह-माया का और यह अपना बनाया है। इसलिए कबीर साहेब ने कहा है—

ई जग जरते देखिया, अपनी अपनी आगि।
ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लागि॥

(बीजक, साखी. 332)

इस पूरे संसार को मैं अपनी-अपनी आग में जलते हुए देखता हूं। ऐसा कोई नहीं मिलता है जिसकी शरण में आकर इस जलती हुई आग से बचा जा सके।

प्रश्न होता है कि क्या आग भी अपनी और परायी होती है। कबीर साहेब तो यही कहते हैं, 'ई जग जरते देखिया, अपनी अपनी आग' अपनी-अपनी आग में सारा संसार जल रहा है। बाहर की आग सबके लिए एक जैसी होती है। किसी मकान में आग लगती है तो घर वाले मकान से बाहर भागकर उस आग से बच जाते हैं लेकिन अपनी बनायी जो आग है उससे बाहर भागकर बचा नहीं जा सकता। वह अपनी बनायी हुई आग है जिसमें सब लोग जल रहे हैं। उस आग को किसी ने लगायी नहीं है। उस आग में बाहर का कोई ईंधन नहीं होता। बाहर जब पेट्रोल, कोयला, कण्डा, कपड़े-लत्ते आदि कुछ इंधन हो तब आग लगती है। यदि ये सब न हों तो आग नहीं लगती ।

लेकिन भीतर बिना पेट्रोल के, बिना तेल, लकड़ी, कंडा, कोयला, कपड़े-लत्ते, बिना इंधन के आग लगी हुई है। हर आदमी के अंदर आग लगी हुई है, किन्तु उस आग से परिचित नहीं हैं। इसलिए उस आग से बचने का प्रयास भी नहीं करते। और यह आग अपनी-अपनी बनायी हुई है। यह आग ईर्ष्या-द्वेष की, क्रोध-काम की, लोभ-अहंकार की, लड़ाई-झगड़े की, घृणा एवं वैमनस्य की आग है। यही आग हर आदमी के दिल में लगी हुई है और लगाने वाले लोग स्वयं हैं।

किसी की बढ़ोत्तरी को देख लिये, किसी की सुंदरता देख लिये, किसी की जवानी देख लिये, किसी की गाड़ी देख लिये, किसी का सुंदर मकान देख लिये तो मन में ईर्ष्या शुरू हो गयी, जलन शुरू हो गयी। किसने लगायी है इस आग को? स्वयं ने तो लगायी है।

एक बहुत पुरानी घटना है। एक गांव में पड़ोस की दो महिलाओं को एक साथ बच्चा पैदा हुआ। एक महिला का बच्चा दुर्बल-कमजोर था और दूसरी महिला का बच्चा बड़ा हृष्ट-पुष्ट और देखने में बड़ा सुंदर था। महीना दो महीना बीतने के बाद जिस महिला का बच्चा कमजोर था वह महिला पड़ोसिन के बच्चे को देखने लगी तो उसके मन में ईर्ष्या होने लग गयी। ईर्ष्या इतनी बढ़ती गयी कि वह सोचने लगी कि पड़ोसिन को दुख कैसे पहुंचाऊं। एक दिन जिस महिला का बच्चा मोटा-तगड़ा और स्वस्थ था वह महिला दूर कुएं से पानी लाने के लिए गयी हुई थी। घर में उसके बच्चे के अलावा और कोई नहीं था। वह महिला जिसका बच्चा कमजोर था पड़ोसिन के घर को सूना जानकर गयी और उसके बच्चे का गला दबाकर उसकी जान ले ली। ईर्ष्या की आग ऐसी होती है।

ईर्ष्या की आग जब लगती है तो बाहर कितनी भी ठण्डी पड़ जाये आदमी शीतल नहीं होता है। क्रोध की, लोभ की, द्वेष की आग मन में लगी हुई है तो शरीर को

हिमालय में भी गाड़ दोगे तो भी शीतलता नहीं मिलेगी। इसलिए किसी ने कहा है—

है आबोहवा ठण्डी कश्मीर नहीं साहब।
कलेजा हो ठण्डा जहां कश्मीर उसे कहते हैं॥

कलेजा ठण्डा हो तो ज्येष्ठ की दुपहरी में भी कश्मीर है और कलेजा जल रहा है तो कश्मीर में जाकर शरीर को गाड़ दोगे तो भी ठण्डा नहीं होगा। कश्मीर में जाने वालों का दिल ठण्डा होता तो कश्मीर में आग क्यों लगी होती? आतंकवादी निर्दोष लोगों की हत्या क्यों करते? क्यों गरीबों को मारते? कितनी माताओं की गोद और मस्तक का सिंदूर उजड़ गये। कितनों के घर सूने पड़ गये। कश्मीर में जाने मात्र से शीतलता नहीं मिलेगी।

मन की आग को मिटाना होगा। यह मन की आग हर आदमी की अपनी बनायी आग है। बाहर कितना भी पानी डालो यह आग मिटेगी ही नहीं। यह आग तो मिटेगी ज्ञान का जल पाकर। इसलिए कबीर साहब ने कहा है—

साधू बिरछ सद्ज्ञान फल, शीतल शब्द विचार।
जग में होते साधू नहीं, जरि मरता संसार॥

साधु वृक्ष है, सद्ज्ञान उसके सुंदर फल हैं और जो विचारपूर्ण वाणी है वह शीतल छाया है। ऐसे निर्णयपूर्ण-विचारपूर्ण जो वाणी है उस वाणी की छाया में जाकर जब अपने मन को विश्राम देंगे तब भीतर की जलन मिटेगी, तब हृदय शांत होगा। और जब तक निर्णय वचनों को मन में स्थान नहीं देंगे, ज्ञान के शब्दों को आचरण में नहीं लायेंगे तब तक भीतर की आग मिटेगी नहीं।

खास बात है संसार में तो रहना होगा, संसार से भागकर कोई जा नहीं सकता, लेकिन संसार में रहना अलग बात है और सांसारिकता में मन को उलझाना बिल्कुल अलग बात है। संसार में रहें लेकिन सांसारिकता में मन को उलझायें न।

जैसे नाव नदी में ही तैरती है। पानी जब गहरा होगा तभी नाव तैरेगी। पानी नहीं होगा, सूखी नदी में आप नाव तैराना चाहोगे तो कभी संभव नहीं है। नाव जब भी तैरेगी तो पानी में ही तैरेगी। ध्यान यह रखना है कि नाव पानी में तो रहे किन्तु नाव में पानी न आने पाये। जब तक नाव पानी में है तब तक कुशलता है और जब नाव में पानी आ गया तब डूबकर मर जाना होगा।

इसी प्रकार शरीर संसार में रहे किन्तु मन को संसार में डूबने न दे। शरीर तो संसार में ही रहेगा। संत का शरीर हो चाहे गृहस्थ का शरीर हो सब संसार में ही रहेगा। अतः संसार में रहें परन्तु सांसारिकता का त्याग करके रहें। अपने आप को उसी प्रकार बनाये रखें जैसे मेहमान होता है। मेहमान जब मेहमानी करने जाता है तो उसका स्वागत-सत्कार बहुत होता है लेकिन वह कहता है भैया! अब छुट्टी दो, मुझे अब घर जाना है। कितना स्वागत करो मेहमान का, वह रुकने को तैयार नहीं होता। इसी प्रकार यह समझें कि यह संसार मेहमानी की जगह है।

मेहमानी करने के लिए यहां आये हुए हैं। अंत में यहां से जाना ही होगा। चाहे मन को मारकर जायें चाहे मन को जीतकर जायें। मन को मारकर नहीं जायेंगे तो मन की जो वासनाएं हैं उन वासनाओं के कारण पुनः संसार में भटकना पड़ेगा और मन को जीतकर जायेंगे, वासनाओं को समाप्त करके, कर्मों को सुंदर बनाकर जायेंगे तो फिर संसार में भटकना नहीं होगा। जीवन पार हो जायेगा। जिसके लिए यह जीवन मिला है वह कृतार्थ हो जायेगा।

खास बात है राम को बाहर से पाना नहीं है। राम तो नित्य प्राप्त है। मन को जो दुनियादारी में, सांसारिक राग-रंग, मोह-माया, अहंता-ममता में उलझा रखे हैं उसे वहां से हटाकर राम में, आत्मचिंतन में लगाना है। संसार बंधन नहीं है, बंधन सांसारिकता है। इसी शरीर-संसार में रहते हुए जिसने देहासक्ति-सांसारिकता का त्याग कर दिया और मन को अंतर्मुख-आत्मलीन कर लिया वह हर समय मुक्त है, उसे राम हर समय मिला हुआ है।

—धर्मेन्द्र दास

बीजक चिंतन

सारशब्द एवं निर्णय वचनों से ही कल्याण है

शब्द-114

सार शब्द से बाँचिहो, मानहु इतबारा हो॥
आदि पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा हो॥
तिरदेवा शाखा भये, पत्र संसारा हो॥
ब्रह्मा वेद सही कियो, शिव योग पसारा हो॥
विष्णु माया उत्पति कियो, ई उरले ब्यौहारा हो॥
तीन लोक दशहूँ दिशा, यम रोकिन द्वारा हो॥
कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो॥
ज्योति स्वरूपी हाकिमा, जिन्ह अमल पसारा हो॥
कर्म की बन्शी लाय के, पकरो जग सारा हो॥
अमल मिटावो तासु का, पठवों भव पारा हो॥
कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो॥

शब्दार्थ—सार शब्द=निर्णय वचन। बाँचिहो=बचोगे, सुरक्षित हो सकोगे, दुखों से छूटोगे, असंग हो सकोगे। इतबारा=विश्वास। आदि पुरुष=मूल पुरुष, चेतन। निरंजन=मन। तिरदेवा=रज, सत तथा तम एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव। शाखा=डालियां। सही कियो=प्रमाणित किया, संपादन किया। माया=भक्ति, उपासना। उरले=उरला, पिछला। यम=वासना। कीर=शुक पक्षी, तोता। विष=विषय। ज्योति स्वरूपी=मन, मन की कल्पित अवधारणा। हाकिमा=हाकिम, राजा, शासक। अमल=अधिकार, लत, आदत। बन्शी=बंशी, मछली फंसाने का कांटा, कंटिया। भव=मन का आयाम, जन्म-मरण। टकसारा=टकसाल, सिक्कों की ढलाई का स्थान, निर्दोष वस्तु, निजस्वरूप चेतन, आत्मा।

भावार्थ—यह विश्वास करो कि निर्णय वचनों के सहारे से ही तुम भवबंधनों एवं दुखों से मुक्त होकर अपनी असंग दशा में स्थित हो सकोगे ॥ 1॥ यह मूल पुरुष चेतन ही मानो एक वृक्ष है, मन उसकी डाली है; रज, सत एवं तम ये त्रिगुण उसकी शाखाएं और संसार उसके पत्ते हैं ॥ 2-3॥ रजोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रह्मा ने वेदों का संपादन किया और कर्ममार्ग चलाया, तमोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले शिव ने योग-मार्ग का विस्तार किया और सतोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले विष्णु ने भक्ति एवं उपासना-मार्ग का प्रवर्तन किया, जो पीछे से व्यवहार में आया ॥ 4-5॥ तीनों लोकों और दसों दिशाओं में वासना ने कल्याण का मार्ग रोक दिया है ॥ 6॥ जैसे तोते चारे के लोभ से नलिका यन्त्र में फंस जाते हैं वैसे जीव विषयरूपी चारे के प्रलोभन में पड़कर संसार में फंसे हुए हैं ॥ 7॥ यह मन जाज्वल्यमान राजा एवं शासक बन गया है और अपना अधिकार चारों तरफ कायम कर लिया है ॥ 8॥ इसने कर्मजाल की बंसी फेंककर जगत के सारे जीवरूपी मछलियों को फंसा लिया है ॥ 9॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो एवं कल्याण-इच्छुको ! तुम मन-राजा का अधिकार मिटा दो। मैं तुम्हें भव से पार भेजता हूं, और निर्भय करता हूं। तुम निर्दोष ज्ञान तथा निजस्वरूप चेतन की परख करो ॥ 10-11॥

व्याख्या—"सार शब्द से बाँचिहो, मानहु इतबारा हो।" सारशब्द के सहारे से ही बचोगे, यह विश्वास करो। सारशब्द क्या है? वस्तुतः निर्णय वचन को ही सारशब्द कहते हैं। श्री रामरहस साहेब ने अपनी महान रचना पंचग्रन्थी में सारशब्द का कई जगह वर्णन किया है। उन्होंने कहा है कि काल, संधि, झांई और सार चार प्रकार की वाणियां होती हैं। बहुत स्थूल बुद्धि से कही गयी वाणियां 'काल वाणी' हैं, अपने स्वरूप से अलग अपना लक्ष्य खोजने की बात 'संधि' वाणी है, अपनी आत्मा को, अपने चेतनस्वरूप को जगत से अलग न समझकर जड़-चेतन मिला-जुला बताने वाली वाणी "झांईं वाणी" है। ये सारी वाणियां बंधनप्रद हैं। इनसे पृथक चौथी 'सार वाणी' है। जड़-चेतन का भिन्न निर्णय कर अपने चेतनस्वरूप को समस्त जड़ वर्ग से अलग सिद्ध करने वाली वाणी सार वाणी एवं सारशब्द है। वस्तुतः जो जैसा है उसको वैसा ही बताने वाला वचन सारशब्द है। यथार्थ निर्णयवचन को

सारशब्द कहते हैं।[1] जो कथन विश्व के नियमों एवं कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुकूल तथा प्रकृति-संगत है वह सारशब्द है। सच्चा निर्णयवचन ही सारशब्द है। सार्वभौमिक दृष्टिकोण वाले सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मानव ! तुम सारशब्द के सहारे ही बचोगे। वेद हों या बाइबिल, कुरान हो या जिंदावेस्ता, गुरु-वाणी में हो या दीवार पर लिखा, संत एवं विद्वान के मुख से निकला हो या घोर संसारी तथा अपढ़ के मुख से, जो निर्णयवचन है, जो निष्पक्ष न्याय देने वाली वाणी है, वही सारशब्द है। सारशब्द का सिद्धांत यह परवाह नहीं करता कि किसने कहा है तथा किसमें कहा है, वह तो केवल एक बात देखता है कि क्या कहा है ! किसी महापुरुष, परंपरा तथा ग्रंथ के गीत गाने मात्र से मनुष्य का कल्याण नहीं होगा। किन्तु सारशब्द एवं निर्णयवचनों से कल्याण होगा। लोग अपनी मानी गयी परंपरा, गुरु तथा पोथी के इतने पक्षपाती हो जाते हैं कि उन्हें निर्णयवचनों की परवाह ही नहीं होती। वे "अन्धे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय।" की कहावत चरितार्थ करते हैं। परन्तु निष्पक्ष व्यक्ति अपने-पराये की परवाह न कर केवल सही निर्णय पर ध्यान रखता है। दो और दो चार, इस सत्य निर्णय को ही सारशब्द कहते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि सारशब्द के सहारे से ही बचोगे। बचना क्या है? बचने के हम तीन अर्थ कर सकते हैं— अलग रहना, शेष रहना तथा दुखों से पृथक सुरक्षित रहना। अतएव सारे भव-बंधनों से अलग रहना, बचना है; मन सहित सारे जड़भावों को छोड़कर शेष चेतन मात्र रह जाना, बचना है तथा मन से अपने आप को अलग कर लेने से सारे दुखों से छूट जाना एवं सुरक्षित हो जाना, बचना है। विचारकर देखें तो बचने के सारे अर्थ केवल एक ही भाव को व्यक्त करते हैं—दुखों से मुक्त हो जाना। जब तक व्यक्ति अपनी आत्मा को, अपनी चेतना को सबसे अलग नहीं कर लेगा तब तक सारे दुखों से मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु अपनी आत्मा को सबसे अलग करने के लिए जड़-चेतन-भिन्न निर्णय की सच्ची समझ चाहिए तथा धर्म और अध्यात्म के क्षेत्रों में फैले हुए नाना भ्रमों के निराकरण के लिए सारशब्द एवं निर्णयवचनों का अभ्यास चाहिए। असार वाणियों ने बड़ी भ्रांति फैला रखी हैं। उन्हें काटकर सत्यस्वरूप की स्थिति के लिए सारशब्द एवं निर्णयवचनों के अभ्यास की महती आवश्यकता है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं कि सारशब्दों के विवेक से ही बचोगे। "मानहु इतबारा हो" इसमें भी विश्वास करने की आवश्यकता पड़ती है। संसार में लोग मिथ्या महिमा में पड़े हैं। वे उसी से अपना कल्याण समझते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि मिथ्या महिमा से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। यह विश्वास करो कि तुम्हारा कल्याण सत्य से होगा और सत्य का बोध तब प्राप्त होगा जब सारशब्द एवं निर्णयवचनों को आदर दोगे। तुम केवल परंपरा को प्रश्रय न दो, किन्तु सत्य निर्णय को प्रश्रय दो। इसी से सबका कल्याण है।

"आदि पुरुष एक वृक्ष है" यह कई बार निवेदित किया गया है कि किसी कालखंड के आरम्भ को आदि कहते हैं तथा मूल को भी आदि कहते हैं। जहां आदि का अर्थ मूल होता है वहां आदि का अर्थ अनादि हो जाता है क्योंकि मूल वस्तु अनादि होती है। सांख्यकार ने कहा है—"मूल में मूल का अभाव होने से अमूल होता है मूल।"[2] पेड़ की जड़ होती है, किन्तु जड़ की जड़ नहीं होती। इसी प्रकार संसार-प्रपंच के मूल में जड़ और चेतन एवं प्रकृति और पुरुष हैं। परन्तु जड़-चेतन एवं प्रकृति-पुरुष के कोई अन्य मूल नहीं है। यहां सद्गुरु कहते हैं— "आदि पुरुष एक वृक्ष है" अभिप्राय हुआ कि अनादि चेतन पुरुष ही मानो वृक्ष है। यहां वृक्ष का अभिप्राय भी मूल ही है। अर्थात हर व्यक्ति के संसार-वृक्ष का मूल उसकी अपनी आत्मा ही है। मेरा अपना माना हुआ संसार मेरी चेतना की सत्ता से ही चलता है। यह चेतन जब बाहर प्रवृत्त होता है तभी तो संसार-वृक्ष हरा-भरा होता है। सारी प्रवृत्ति मन द्वारा होती है। इसलिए सद्गुरु ने 'निरंजन' को 'डार' बताया है। यहां 'निरंजन' का अर्थ मन है।

'तिरदेवा शाखा भये, पत्र संसारा हो।" मनरूपी डाली की तीन अन्य शाखाएं हैं—रज, सत और तम। ये त्रिगुण

---

1. सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा॥
   सारशब्द कहिये टकसार। त्रिविधि शब्द को परख विचार॥
   सारशब्द पाये बिना, जीवहिं चैन न होय।
   कालफन्द जाते लखि परै, सारशब्द कहिये सोय॥
   (पंचग्रन्थी, गुरुबोध, सारशब्द निर्णय)

2. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ 1/68 ॥

ही मानो त्रिदेव हैं जो मन की छोटी-छोटी शाखाएं हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, राग-द्वेषादि मानो संसार हैं जो उसके पत्ते हैं। मन के इन तीनों गुणों की प्रवृत्तियों से संसार-प्रपंच का विस्तार होता है। यहां संसार का अर्थ चांद, सूरज तथा सितारों से भरा यह अनंत विश्व-ब्रह्मांड न समझकर व्यक्ति के अपने कामादि भव-बंधनों का संसार समझना चाहिए। हमारा व्यक्तिगत संसार ही हमें पीड़ित करता है। अतः हमें अपने माने हुए व्यक्तिगत संसार से ही मोक्ष लेना है। इस प्रकार मन, तीन गुण तथा काम, क्रोधादि मिलकर हमारा संसार-वृक्ष है। इसके मूल में अनादि चेतन पुरुष है जो अपने आप की भूल से इसमें लिपटा है। चेतन पुरुष अपनी सत्ता मन को न दे और अपने आप में स्थित हो जाये तो भव-वृक्ष स्वयं कट जाये।

"ब्रह्मा वेद सही कियो, शिव योग पसारा हो। विष्णु माया उत्पत्ति कियो, ई उरले व्यौहारा हो।" संसार के उद्धार के लिए ब्रह्मा, महादेव तथा विष्णु ने क्रमशः कर्मकांड, योगकांड तथा उपासनाकांड का प्रवर्तन किया। ब्रह्मा ने वेदों का संपादन किया। ब्रह्मा तो एक प्रतीक है। वस्तुतः यज्ञ का बड़ा पुरोहित ब्रह्मा कहलाता है। वेदों में कर्मकांड एवं यज्ञ-हवन आदि का विस्तार है जिनके करने के फल में पुत्र, स्त्री, धन, स्वर्गादि पाने का प्रलोभन दिया गया है। इसमें समाज को लाभ तो कोई खास नहीं मिला, हां, यज्ञ के नाम पर पुराकाल में अधिक धन खर्च होता रहा, पशुओं की हत्या होती रही और पंडितों का पेट-धन्धा चलता रहा। इस धन्धा को चलाने के लिए वे यज्ञ के काल्पनिक लम्बे-चौड़े फलों का व्याख्यान करते रहे।

नीरस कर्मकांड के प्रपंच से जब जनता ऊब गयी तब शिव-जैसे योगियों का प्रादुर्भाव हुआ जो ज्ञानपूर्वक मनोनिग्रह में तल्लीन हुए। शिव तो एक प्रतीक-जैसा लगता है जिसकी व्याख्या उपनिषद् के ऋषियों तथा कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर-जैसे महाज्ञानियों एवं योगियों में ही हो सकती है। इस प्रकार ज्ञानपूर्वक योगमार्ग चला।

परन्तु सभी मनुष्य इसके अधिकारी नहीं थे। इसलिए विष्णु ने माया उत्पन्न किया। विष्णु भी एक प्रतीक ही है। इसका अर्थ है कि भक्ति-भावना के हृदय वालों ने भक्ति का पथ चलाया। यहां माया का अर्थ भक्ति एवं उपासना है। "विष्णु माया उत्पत्ति कियो" अर्थात भक्ति-हृदय वालों ने उपासना-भक्ति का मार्ग चलाया। साहेब कहते हैं "ई उरले व्यौहारा हो" अर्थात यह व्यवहार, यह भक्ति का प्रचलन 'उरला' का है। 'उरला' कहते हैं पीछे को। उरला का दूसरा अर्थ निराला एवं विलक्षण भी होता है, परन्तु यहां उरला का अर्थ पीछे करना अधिक उपयुक्त है। ऐतिहासिक अध्ययन करने पर भी यही बात सही पायी जाती है कि भारतीय परम्परा में पहले कर्मकांड ही था। जिसका प्रतीकात्मक प्रवर्तक ब्रह्मा माना जा सकता है। ब्रह्मा नाम का व्यक्ति हुआ हो या नहीं, किन्तु यज्ञ के चार प्रमुख पुरोहितों—ब्रह्मा, होता, उद्गाता एवं अध्वर्यु[1] में ब्रह्मा प्रथम है। कर्मकांड के बाद ज्ञान एवं योगकांड का प्रचलन हुआ, और उसके बाद भक्ति एवं उपासनाकांड प्रचार में आया।

हम पीछे 81वें शब्द की व्याख्या में देख आये हैं कि भक्ति की भावना तो किसी-न-किसी प्रकार मनुष्य के जीवन के साथ है, परन्तु शायद भक्ति शब्द का प्रयोग श्वेताश्वतर उपनिषद् (6/23) में पहली बार आया "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" अर्थात जैसे देव में परम भक्ति होती है वैसे गुरु में होती है। प्रवृत्तिमूलक रागात्मक सगुण भक्ति संभवतः प्रथम यादवों में शुरू हुई। अंशु के पुत्र राजा सत्वत थे। उन्होंने नारायण एवं विष्णु की भक्ति चलायी। इसी परंपरा में पीछे श्रीकृष्ण हुए जो कालांतर में स्वयं विष्णु का पूज्य स्थान ग्रहण कर लिये। इस प्रकार कर्मकांड, ज्ञानकांड तथा योगकांड के बाद भक्तिकांड का प्रचार हुआ। इसलिए भक्ति का व्यवहार 'उरला' है, पीछे का है, यह तथ्य है। साहेब ने यहां "विष्णु माया उत्पत्ति कियो" कहकर भक्ति को माया शब्द से क्यों याद किया है? वस्तुतः सगुण भक्ति माया वर्ग की

---

1. यज्ञ में चार मुख्य पुरोहित होते हैं, ब्रह्मा, होता, उद्गाता एवं अध्वर्यु। ब्रह्मा समस्त यज्ञ के विधि-विधान का निरीक्षक होता है, होता हवन करने वाला, उद्गाता सामगान करने वाला तथा अध्वर्यु वह होता है जो लकड़ी ठीक करे, यज्ञपात्र साफ करे, यज्ञ-पशु का वधकर उसका मेदस् निकाले आदि। इन चारों पुरोहितों के तीन-तीन अन्य सहायक होते हैं। उनके नाम हैं—प्रशास्ता, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता, अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता, ग्रावस्तुत, नेता, होता और सुब्रह्मण्य।

है ही। यह ठीक है कि भक्ति मन की कोमलता है जिसकी आवश्यकता है; परन्तु भक्ति का जो आलम्बन भक्त लोग लेते हैं वह 'कर कंज पद कंजारुणम्' सब माया ही है। कीट से लेकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सबकी देह जड़ प्रकृति से ही निर्मित हैं, और यदि भक्ति तथा उपासना का आलंबन किसी की देह तक ही है तो यह भक्ति माया से बाहर कहां है? जब भक्ति का आलंबन निज चेतनस्वरूप बनता है तब भक्ति माया से परे पहुंच जाती है। परन्तु विष्णु से जुड़ी भक्ति रागात्मक एवं सगुण है। इसलिए वह माया का शुद्ध रूप ही है।

"तीन लोक दशहूँ दिशा, यम रोकिन द्वारा हो।" तीन लोक तथा दसों दिशाओं का लाक्षणिक अर्थ है पूरा संसार। पूरे संसार में यम ने कल्याण का द्वार रोक दिया है। ध्यान रहे, यम कोई स्वतन्त्र दैत्य नहीं है कि उसने सारे संसार में सबका मोक्ष-द्वार बन्द कर दिया हो। वस्तुतः हर मनुष्य के मन में विषयों की वासनाएं हैं। ये वासनाएं ही यम हैं जिन्होंने मनुष्य के कल्याणमार्ग को रोक रखा है। हमारी बनायी हमारे मन की वासनाएं ही हमें मोक्ष से, शांति से एवं स्वरूपस्थिति से वंचित किये रहती हैं। हमारे कल्याण में न अन्य प्राणी बाधक हैं और न अन्य पदार्थ, केवल हमारे मन की वासनाएं ही बाधक हैं।

"कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो।" कीर का अर्थ तोता है। तोता नलिका-यंत्र (चरखी) में इसलिए फंस जाता है, क्योंकि वह उसमें लगी लाल-मिर्ची को खाने के प्रलोभन से उस पर बैठता है और उसके बैठते ही चरखी घूम जाती है तथा तोता फंस जाता है। यही दशा सब जीवों की है। सब जीव विषय-भोगों के चारे में फंसते हैं। सद्गुरु ने यहां कितना वैराग्योत्तेजक पंक्ति कही है "कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो।" कीर का अर्थ सर्प भी होता है जो अपने मुख में स्वाभाविक विष की पोटली लिये रहता है। यह अर्थ भी उपयुक्त ही है। इस अर्थ में 'विष' का मूल अर्थ विष ही रहता है तथा लक्षणा अर्थ विषय होता है। जैसे सर्प अपने मुख में स्वाभाविक विष की पोटली रखता है, वैसे संसारी जीव मानो स्वाभाविक ही मन में विषय-वासनाएं रखते हैं। ध्यान रहे, जीव का मौलिक स्वरूप विषय-वासनाओं से सर्वथा रहित है, परन्तु अज्ञानवश सदैव विषयों में डूबे रहने से वासनाएं प्रबल हो गयीं हैं। इन्हीं विषय-वासनाओं के कारण जीव भटक रहा है।

"ज्योति स्वरूपी हाकिमा, जिन्ह अमल पसारा हो। कर्म की बन्शी लाय के, पकरो जग सारा हो।" ज्योतिस्वरूपी हाकिम मन है। यह जाज्वल्यमान एवं तेज-तर्रार है, इसलिए सद्गुरु ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि इस ज्योतिस्वरूपी हाकिम मन ने जीवों पर अपना शासन जमा रखा है। इस मन ने कर्म की बंसी लगाकर जगत के सारे जीवों को पकड़ लिया है। बंसी के आंकुड़े में चारा लगाकर पानी में डाल दिया जाता है। मछली चारा खाने के लोभ में उसे मुख में लेती है और मछुआरा बंसी खींच लेता है तथा लोह के आंकुड़े में मछली का मुख फंस जाता है। इस प्रकार मछली मारी जाती है। यह मन मानो मछुआरा है। यह कर्म की बंसी में भोगों का चारा लगाता है और जीव उसमें फंस जाता है। संसार के सारे जीव भोग के मोह से कर्मजाल में फंसे पड़े बंधनों का दुख भोग रहे हैं।

"अमल मिटावो तासु का, पठवों भव पारा हो।" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे साधको ! ज्योतिस्वरूपी हाकिम-मन का शासन मिटा दो। मैं तुम्हें भव से पार भेज रहा हूं। इस मन से पार हो जाना ही भव से पार हो जाना है। सब जीव मन के शासन में हैं। जो जीव मन पर शासन करता है वही भव से पार है। काम भव है, क्रोध भव है, लोभ भव है। इसी प्रकार समझ लो कि मोह, ईर्ष्या, भय, राग, द्वेष, आशा, तृष्णा, चिंता, विकलता, उद्वेग, परेशानी आदि भव हैं। मन के शासन में ही यह सब भव विद्यमान रहता है। जहां मन का शासन जीव पर से हटा, जहां जीव स्वतन्त्र हुआ कि यह भव समाप्त हो जाता है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे जीव ! अपने ऊपर से मन का शासन मिटा दो। भारत को स्वतन्त्र करने में भारतवासियों को अपनी कितनी कुर्बानी देनी पड़ी है ! तुम्हें भी मन के शासन से मुक्त होने के लिए त्याग करना पड़ेगा। विषयों के त्याग से तुम्हारे ऊपर से मन का शासन हटेगा। जब मन का शासन हट जायेगा तब तुम भव से पार हो जाओगे।

"कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो।" कबीर साहेब कहते हैं कि हे मनुष्य ! हे साधक ! मैं तुम्हें निर्भय कर रहा हूं, तुम निर्दोष वस्तुओं को परखो। टकसाल कहते हैं जहां सिक्के ढलते हैं। इसका अर्थ हुआ प्रामाणिक वस्तु। टकसाल का दूसरा अर्थ निर्दोष वस्तु भी है। दोनों अर्थों में निकटता है। प्रामाणिक वस्तु एवं निर्दोष वस्तु का अभिप्राय एक ही है। जो वस्तु प्रामाणिक होगी वही निर्दोष होगी और जो निर्दोष होगी वही प्रामाणिक होगी। यहां निर्दोष वस्तु को परखने का अर्थ है सभी दिशाओं में सच्चा ज्ञान ग्रहण करना। कोई ज्ञान तभी निर्दोष माना जाता है जब उसमें अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असंभव—ये तीन दोष न हों। जैसे कोई कहता है कि गाय वह है जिसको सींग है, तो यह अतिव्याप्ति दोष है अर्थात यह लक्षण दूसरे पशुओं में भी व्याप्त है। क्योंकि सींग गाय के अतिरिक्त अन्य जानवरों को भी होती है जैसे भैंस, हिरन, बकरी आदि। कोई कहता है कि गाय वह है जिसका रंग लाल है, तो वह अव्याप्ति दोष है अर्थात यह लक्षण सभी गायों में व्याप्त नहीं है; क्योंकि गायें लाल के अलावा काली, उजली, बगरी आदि भी होती हैं। कोई कहता है कि गाय वह है जिसके खुर फटे न हों, तो यह असंभव दोष है; क्योंकि सभी गायों के खुर फटे होते हैं। इस प्रकार अतिव्याप्ति, अव्याप्ति एवं असंभव—इन तीनों दोषों से सर्वथा मुक्त ज्ञान निर्दोष ज्ञान है। इस शब्द के आरम्भ में ही सद्गुरु ने कहा है "सारशब्द से बाँचिहो" सारशब्द एवं निर्णयवचन से ही निर्दोष ज्ञान होगा। निर्णय शब्दों को छोड़कर धर्म के नाम पर बिना सिर-पैर की हजारों बातें चलती रहती हैं। निर्दोष ज्ञान सहज समझ में आता है।

अन्ततः अपनी आत्मा ही स्वरूपतः निर्दोष है। साहेब कहते हैं बाहरी निर्दोष ज्ञान से तुम्हारी निर्भयता बढ़ेगी, परन्तु पूर्ण निर्भयता तब होगी जब अपने निर्मल निर्दोष चेतन स्वरूप की परख होगी। चेतन से अलग परख-शक्ति नहीं होती। चेतन अपनी ही परख-शक्ति से बाहरी वस्तुओं एवं ज्ञान को परखता है। जीव अपने परख-बल से निजस्वरूप को तथा पर को जितना परखता जाता है उतना निर्भय होता जाता है। जब वह सारशब्द तथा परख-बल से बाहरी ज्ञान को परखता है, तब उसके मन की सारी भ्रांतियां कट जाती हैं और उसका बाह्यज्ञान सच्चा हो जाता है। उसकी दृष्टि में कोई चमत्कार तथा अद्भुत बात रह ही नहीं जाती। वह प्रकृति के शाश्वत नियमों को समझ लेता है और सारे तथाकथित चमत्कार एवं अद्भुत कही जाने वाली बातों के चक्कर तथा अंधविश्वास से मुक्त हो जाता है। वह अपने आप को परख लेने पर पूर्ण निर्भय हो जाता है। जिसे अपने चेतनस्वरूप की परख हो गयी, उसे कहां भय, कहां चिंता और कहां शोक ! अतएव सद्गुरु का यह परम वाक्य अत्यन्त आदरणीय है—"कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो।" ❑

निज स्वरूप पहचान लो

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

आत्म रमण है सुखकारी
यह परम सत्य तुम जान लो
बाह्य जगत में सुख नाहीं
निज स्वरूप को पहचान लो।

तन का स्वास्थ्य सुखकर है
मन का स्वास्थ्य सुधार लो
चहुँ ओर अशांति की ज्वाला
शांति का सत्पथ संवार लो
मैं हूँ निर्मल, निश्चल आत्मा
यही सार तथ्य संज्ञान लो।

अनर्गल बातों से क्या लाभ
वाणी संयम का अभ्यास कर
हर जीव में आत्म तत्त्व निहार
वृथा न कभी परिहास कर
मुक्ति का मार्ग नहीं असंभव
गुरु चरणों में नित ज्ञान लो।

किसी के प्रति कर उपकार
आशीषों से झोली भर लो
मैत्री-सद्भावना अपनाकर
निज हृदय को पावन कर लो
मनोविकारों को दूर हटाकर
सुकल्याण सुगति सोपान लो।

कहानी

पुजारी का प्रायश्चित

लेखक—डॉ. अमरनाथ सिंह

लखनपुर बाजार से लगभग आधा कि.मी. की दूरी पर शिवमंदिर था। मंदिर में निरंजन बाबा और निर्मल बाबा दो पुजारी रहा करते थे। मंदिर में रोजाना बहुत-से श्रद्धालु आया करते थे। श्रद्धालुओं द्वारा मंदिर में फल-फूल-मिष्ठान्न एवं रुपये-पैसे के चढ़ावे से दोनों पुजारियों का जीविकोपार्जन होता था। कुछ भले लोग उनके कपड़े आदि की व्यवस्था कर देते थे। जहां एक ओर निरंजन बाबा सात्त्विक वृत्ति के साथ मंदिर में रहा करते थे, वहां निर्मल बाबा नशे के लती एवं तुनुकमिज़ाजी स्वभाव के थे। उनके स्वभाव के कारण ही उनके सम्पर्क में कुछ नशेड़ी लोग भी मंदिर में आया करते और अपने साथ गांजा-भांग, पान-तम्बाकू लाते और निर्मल बाबा के साथ मंदिर के पीछे नशे का सेवन करते। निर्मल बाबा भोलेशंकर की बूटी कहकर रोजाना चार-छः चिलम तो चटका ही लेते थे। तम्बाकू तो घण्टा-घण्टा पर होठों के नीचे दबाते रहते। गेरुआ लिबास में पान खाकर मुंह लाल किये हुए और भी अच्छे लगते थे।

निर्मल बाबा के नशा सेवन के सहयोगी मंगला, लल्लू, तेजई और उनके साथी थे। अगर कोई न आता तो वे अपने लिए अग्रिम व्यवस्था जरूर रखते थे।

माताम्बर जिनकी उम्र लगभग पचास-पचपन साल की रही होगी, गांव के एक सम्पन्न एवं सम्मानित व्यक्ति थे। वे मंदिर में आते, दर्शन करते, निरंजन बाबा से मिलते और चले जाते। निर्मल बाबा के क्रिया-कलाप से वाकिफ़ माताम्बर उनसे वास्ता नहीं रखते थे। उनकी गतिविधियां उन्हें सुहा नहीं रही थीं। काफी दिनों से माताम्बर निर्मल बाबा से कुछ बातचीत करने की चाहत रखते थे किन्तु उनके नटखट स्वभाव के कारण हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे कि कहीं कुछ उल्टा-पुल्टा सुनने को न मिल जाये।

एक हफ्ते बाद माताम्बर अपनी पत्नी के साथ सायं करीब 4 बजे मंदिर में आये, देखा कि मंदिर में कोई नहीं है। आज निर्मल बाबा से जरूर कुछ कहना चाह रहे थे। परंतु वे तो मंदिर के पीछे चिलमचट्टुओं के बीच चिलम से धुआं उड़ा रहे थे। माताम्बर ने मंदिर का घण्टा घनघनाया। घंटे की घनघनाहट सुनकर निर्मल बाबा हांफते हुए मंदिर के अन्दर दाखिल हुए। और अपनी तुनकुमिज़ाजी से माताम्बर से कड़े स्वर में कहा—"घण्टा क्यों घनघनाये हो?

माताम्बर ने कहा, "जब मंदिर में कोई नहीं दिख रहा था तो बुलाने का बस यही उपाय था क्योंकि आपसे कुछ बात भी करनी थी।"

निर्मल बाबा ने कहा—"मुझसे।"

"हां, आपसे से ही" माताम्बर ने उत्तर दिया।

निर्मल बाबा ने कहा—"बोलिये, क्या बात करनी है?"

बड़ी विनम्रता से माताम्बर ने कहा, "आप नशा करते हैं, गांजा-भांग, पान-तम्बाकू का सेवन करते हैं। मंदिर का माहौल खराब हो रहा है। इसका समाज पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है, जब आप ही ऐसा करते हैं तो आप किसी को मना भी नहीं कर पायेंगे। आपका स्वास्थ्य भी बिगड़ सकता है।"

इस पर निर्मल बाबा ने माताम्बर से कहा—"शराब थोड़े न पीता हूं, जो नशा करता हूं। गांजा-भांग भोले शंकर की बूटी है, इसे लेने में कोई हर्ज़ नहीं। इसमें भोले शंकर की कृपा रहती है।"

माताम्बर ने फिर से निर्मल बाबा से कहा—"और तो और, गांजा-भांग पीने वालों का फेफड़ा कमजोर हो जाता है। पान-तम्बाकू सेवन करने वालों के मुंह में कैंसर हो जाता है। भगवान न करे ऐसा हो किन्तु इसमें बहुतायत सच्चाई है।"

इसी बीच निरंजन बाबा भी आ गये। वे माताम्बर और निर्मल बाबा की वार्ता सुन लिये थे। वे निर्मल बाबा की ओर इशारा करते हुए बोले, "माताम्बर जी ठीक ही तो कह रहे हैं। नशे के दुष्परिणाम के भुक्तभोगी हुए बहुत से लोगों को हमने भी सुना है।" इसके पहले भी निरंजन बाबा कई बार निर्मल बाबा को हिदायत कर चुके थे। किन्तु काले रंग पर कौन दूसरा रंग चढ़ सकता है।

माताम्बर की पत्नी मोहिनी भी पास में खड़ी थीं, उनसे बिना बोले नहीं रहा गया। निर्मल बाबा से बोल पड़ी—"अरे बाबा जी, नशा करने से किसी को टी.बी., किसी को कैंसर हो जाता है। फिर आप तो मंदिर के पुजारी हैं। दूसरों को मना करना चाहिए किन्तु आप खुद नशे की लत में फंसे हुए हैं।"

निर्मल बाबा मुस्कराते हुए बोले—"ये सब संयोग की बात है। सब भोले शंकर की महिमा है।"

इतने में मंगला, लल्लू, तेजई और चार-छः लोग वहां आ गये। सभी निर्मल बाबा की हिमायत कर रहे थे। उनका रुतबा और भी बढ़ गया। वे चिड़चिड़ाकर बोले—"बकवास मत करो। जाओ चले जाओ यहां से।"

जाते-जाते माताम्बर जोर-जोर से बोलने लगे—"एक निरंजन बाबा हैं, जो बड़ी सादगी से रहते हैं, कोई नशा-पत्ती नहीं करते, और भी तो साधु हैं। बाजार के दूसरे छोर में संत ज्ञानदास अपनी एक छोटी-सी कुटिया में रहते हैं। बड़ी सादगी से रहते हुए सत्संग, प्रवचन, भजन-भाव, ध्यान करते हैं। मैं भी वहां जाया करता हूं। नरसेवा नारायण-सेवा का संदेश मिलता है, एक दूसरे से प्रेम करने की सीख मिलती है। हर नशे से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है। जो भी उनके पास जाता है प्रेम-सद्भाव, सदाचार एवं ज्ञान की बातें बताते हैं। उनके विचारों से मानवता का संदेश मिलता है। निरंजन बाबा भी तो उनके सत्संग में शामिल हुआ करते हैं। दूसरे यह हैं कि नशेड़ियों के बीच चिलम सुलगाते रहते हैं। अपनी गरिमा का भी ध्यान नहीं।" कहते-कहते माताम्बर अपनी पत्नी मोहिनी के साथ अपने घर की ओर चल दिये।

दो दिन बाद निर्मल बाबा बाज़ार में भल्लू चाय वाले की दूकान में बैठे चाय पी रहे थे। संत ज्ञान दास किसी कार्य से उसी रास्ते से गुजर रहे थे। निर्मल बाबा उन्हें देखकर भल्लू से पूछे, "वह बाबा जो जा रहे हैं क्या ज्ञानदास वही हैं। उनका नाम हमने सुना है।"

"हां वही तो हैं। बड़े नेक साधू हैं" भल्लू ने जवाब दिया।

काफी देर तक निर्मल बाबा चाय की दुकान पर बैठे-बैठे गप-शप कर पान खाने के बाद वहां से उठे और शिव-मंदिर की ओर चल दिये। संत ज्ञानदास लौट रहे थे। दोनों का आमना-सामना हो गया। निर्मल बाबा भोले-भोले के सम्बोधन से संत ज्ञानदास से मुखातिब हुए। ज्ञानदास ने नमस्ते-प्रणाम किया।

निर्मल बाबा ने उनसे पूछा—"आप कहां रहते हैं?"

संत ज्ञानदास ने बताया—"बस्ती के दक्षिण-पूर्व में मेरी एक छोटी-सी कुटिया है। वहीं रहता हूं।'

पुनः निर्मल बाबा ने संत जी से कहा—"सुना है आप देवी-देवता, भूत-भवानी, मूर्तिपूजा नहीं मानते। और तो और भगवान को भी नहीं मानते।"

बड़ी सहजता से संत ज्ञानदास ने निर्मल बाबा से कहा—देखिये! यह सब सत्संग-चर्चा का विषय है। रास्ता चलते इस पर बात नहीं की जा सकती। किसी समय मेरी कुटिया में आइये। इस पर विस्तार से चर्चा होगी।" कहते-कहते आगे बढ़ गये।

निर्मल बाबा शिवमंदिर पहुंचे। चिलमचट्टू उनका इन्तजार कर रहे थे। मंदिर के पीछे गये और उन सब के साथ बैठकर चिलम पीने लगे। चिलमकशी के बाद सब गप-शप करने लगे। तभी निर्मल बाबा ने कहा—"आज कुटिया वाला साधू मिला था। वह बड़ा घमण्डी लग रहा था। उससे मैंने कुछ पूछा तो यह कहकर टाल दिये कि "यह चर्चा रास्ता चलते की बात नहीं है।"

इस पर मंगला, लल्लू, तेजई और सभी एक स्वर में बोले—"उहै साधू जौन देवी-देवता, पूजा-पाठ नाहीं मानत। और ऊ तौ भगवानउ के नाहीं मानत अहै।"

"हां-हां, उहै साधू" निर्मल बाबा बोले।

मंदिर में रहते हुए निर्मल बाबा को आठ-दस साल का समय गुजर चुका था। इधर करीब चार-पांच महीने से निर्मल बाबा को खांसी आ रही थी। एक दिन खांसी इतनी तेज हो गयी कि खांसते-खांसते उनका बुरा हाल था। किसी तरह बाजार गये, दवा लाये, कुछ आराम मिला। ठण्डी का महीना था। रात किसी तरह रजाई ओढ़कर बिताये। दिन में भी खांसी का असर बना रहा। आज मंदिर में बैठ भी नहीं पा रहे थे। तबीअत सुधर नहीं रही थी। कमजोरी बढ़ने लगी थी। अचानक तेज खांसी के साथ खून की उल्टियां होने लगीं। निर्मल बाबा घबरा गये। यह देखकर लोग सकपका गये। संयोग से निरंजन बाबा उस वक़्त मौजूद थे। वे उन्हें बाज़ार ले गये, दवा दिलाई, इन्जेक्शन लगवाया। थोड़ी देर में उल्टी में तो आराम मिल गया किन्तु खांसी रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। कई लोगों से निर्मल बाबा ने अनुरोध किया कि चलो मेरी जांच करा दो, कोई तैयार नहीं हुआ। निरंजन बाबा के सिवा तो उनके पास अब कोई आता भी नहीं। मंगला, लल्लू और तेजई जो अधिकांश समय वहीं गुजारते थे अब वे भी बहुत कम आते। श्रद्धालु लोग मंदिर में आते दर्शन करके चले जाते।

एक सप्ताह बीत गया। निर्मल बाबा की यह हालत देखकर अब लोग उनके पास जाना भी पसन्द नहीं करते थे क्योंकि सबको यही आभास होने लगा था कि बाबा जी को टी.बी. हो गया है। यह समझकर कि टी.बी. संक्रामक रोग है, इनके पास जाना ठीक नहीं। बीच में पुन एक बार खून की उल्टी हुई। छाती में दर्द भी होने लगा था।

साहस जुटाकर एक दिन निर्मल बाबा बाजार जा रहे थे। कमजोरी के कारण चलते-चलते गिर पड़े। इत्तिफाक़ से संत ज्ञानदास उधर ही आ रहे थे। वे जैसे ही निर्मल बाबा को उठाने के लिए आगे बढ़े भल्लू चाय वाले की दृष्टि भी उधर पड़ी, दौड़कर आया। संत ज्ञानदास और भल्लू मिलकर निर्मल बाबा को उठाकर सड़क के किनारे एक तरफ बैठा दिये। संत जी से निर्मल बाबा ने अपनी आपबीती सुनाई। उनकी बातें सुनकर संत जी को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने निर्मल बाबा से पूछा—"क्या आप मेरे साथ चल सकते हैं? मैं आपकी पूरी जांच करवाकर इलाज करवा दूंगा।"

निर्मल बाबा तो यही चाहते ही थे। उन्होंने संत जी से कहा—"हां, जरूर चलूंगा। जबसे मेरी यह हालत हुई है, मंदिर में मुझसे अब कोई मिलना तक नहीं चाहता, इलाज करवाने की कौन कहे।"

संत जी ने माताम्बर, निरंजन बाबा तथा अपने एक खास विश्वस्त रामसहाय को बुलवाया। उनकी सहायता से निर्मल बाबा को अपनी कुटिया में ले आये।

दूसरे दिन संत ज्ञानदास के साथ निरंजन बाबा, माताम्बर और रामसहाय निर्मल बाबा को लेकर शहर के एक अस्पताल में ले गये। वहां पर हर प्रकार की आवश्यक जांच हुई। जो शक था वही निकला। उनके फेफड़े में टी.बी. का संक्रमण पाया गया। दाहिने तरफ की पसलियों का क्षरण हो रहा था। यह जानकर निर्मल बाबा के होश उड़ गये। उनका सिर चकराने लगा। रुंआसे हो गये।

संत ज्ञानदास ने उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा—"आप बिलकुल मत घबराइये। एकदम ठीक हो जायेंगे। टी.बी. साध्य रोग है।"

अब निर्मल बाबा आश्वस्त थे। जांच के बाद डॉ. अवस्थी की निगरानी में इलाज चल रहा था। संत जी, माताम्बर, निरंजन बाबा और रामसहाय की निगहबानी में निर्मल बाबा की हालत सुधरने लगी। तीन-चार महीने में भले-चंगे हो गये।

संत ज्ञानदास के निर्देशानुसार माताम्बर और रामसहाय ने इलाज का पूरा खर्च वहन किया। निरंजन बाबा और रामसहाय ने बराबर सेवा की। इन सबके सद्व्यवहारों के बोझ तले दबे जा रहे निर्मल बाबा एक दिन भावविभोर होकर अपने हृदय का उद्गार व्यक्त करते हुए कहने लगे—"मैंने जो पीड़ा आप सबको पहुंचाई थी उसके लिए मैं बार-बार आप सबसे माफी

मांगता हूं। आप लोगों ने मेरी ज़िन्दगी बचाकर नया जीवन दिया, मेरे साथ जो उपकार किये हैं, मैं आप सबका आजीवन अहसानमंद रहूंगा।''

संत जी ने कहा—''इसमें अहसान की क्या बात है! एक इंसान का एक इंसान के प्रति फ़र्ज़ निभाना हर इंसान का धर्म व कर्तव्य होता है।''

अब निर्मल बाबा संत ज्ञानदास को भलीभांति पहचान चुके थे। वे उनकी प्रेरणा से गद्‌गद थे। संत ज्ञानदास निर्मल बाबा को भविष्य में कभी भी कोई नशा न करने की हिदायत दिया करते, हमेशा नियम-संयम, सदाचार, सादगी से जीवन बिताने की सलाह दिया करते। सभी से प्रेम करने का मशविरा देते। उनकी हर बात को बड़ी तन्मयता से सुनते और स्वीकार करते। अब निर्मल बाबा पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। सत्संग प्रवचन में भी शामिल हुआ करते थे। अब उन्हें देवी-देवता एवं भगवान के रहस्यों की समझ आने लगी थी। ''कभी किसी की बुराई नहीं करनी चाहिए। जहां तक बन सके दूसरों की भलाई करके आत्मसुख प्राप्ति की अनुभूति करनी चाहिए।'' ऐसा संदेश सत्संग-प्रवचन के माध्यम से ग्रहण कर निर्मल बाबा खुशी का अनुभव करते। संत जी की कुटिया से जाने का मन ही नहीं करते। कभी-कभी पुरानी बातों को याद कर पश्चाताप में डूब जाते।

चार-पांच महीने संत ज्ञानदास की संगति में रहकर बहुत बदल गये थे। निर्मल बाबा बहुत कुछ सीख गये थे। अब नशे का कभी नाम तक जुबान पर नहीं लाते।

एक दिन संत जी से बातें करते-करते निर्मल बाबा भावविह्वल होकर कह उठे—''लोगों द्वारा आपकी बुराइयां सुनकर मैंने भी आपको बुरा समझने की जो भूल की थी उसके लिए मैं आपसे अन्तर्मन से क्षमा चाहता हूं। क्षमा प्राप्त कर ही मैं अपने को धन्य समझ सकूंगा। अब तो बस आपकी छत्रछाया में रहने का जी करता है। आप निःसन्देह मानवता के पुजारी हैं। देवी-देवता एवं भगवान स्वरूप हैं। जिसका अनुभव मैंने खुद अपने साथ देख लिया है। अब जाके मेरे हृदय की आंखें खुली हैं। आपने मुझे नशा से मुक्ति दिलायी। सपने में भी मैं नशा का विरोध करूंगा।''

निर्मल बाबा के मन में शायद सत्संग-प्रवचन के दौरान सुनी हुई यह उक्ति बैठ गयी थी—''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय। जो दिल खोजा आपनो, मुझ सा बुरा न कोय।'' कहते-कहते उनकी आंखों से आंसू की धारा झरने लगी। निर्मल बाबा संत ज्ञानदास के चरणों में नतमस्तक हो गये।

संत ज्ञानदास ने उन्हें उठाते हुए कहा—''निर्मल बाबा! अब आपका मन निर्मल हो गया है। आप पूर्ण निर्मल हो गये हैं। अब आप मंदिर जाइये। जब कभी सत्संग का मन करे इस कुटिया में आ जाना। जो भी सहायता-सहयोग की जरूरत पड़े याद कर लेना।'' और भी मेरा कहना है—आप वहां जाकर अपने सदाचार, सत्कर्त्तव्यों एवं सद्‌व्यवहारों से श्रद्धालुओं का दिल जीतो और उन नशेड़ियों का हृदय परिवर्तन करो।''

निर्मल बाबा शायद यही संकल्प पूरा करने के लिए शिव मंदिर चले गये। वहां जाकर सबसे पहले निरंजन बाबा से क्षमायाचना किये तत्पश्चात मंगला, लल्लू और तेजई को बुलवाया और उन्हें हिदायत दी कि अब आप लोग इस मंदिर के प्रांगण में नशे के लिए नहीं बल्कि हमारे नशामुक्ति यज्ञ में सहयोग करने के लिए आयें। अब निर्मल बाबा निरंजन बाबा से घुलमिलकर रहने लगे।

''स्वयं को तथा समाज को विनाश से बचाने हेतु नशामुक्ति यज्ञ में सहयोगी बनें।'' यह वाक्य बोर्ड में लिखवाकर निर्मल बाबा ने मंदिर के गेट पर टंगवा दिया।

जीवन-नभ में सुख-दुख के बादल आते जाते हैं।
है जीवन धन्य उसी का जो मन पर नहीं लाते हैं॥

जो सुख दुख में उलझा है वह जीवन हार गया है।
जिसको सुख दुख झूठे हैं वह भव से पार गया है॥

प्रवचन

कबीर की दृष्टि में श्रमिकों का महत्त्व

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 29-10-1993 को कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

(गतांक से आगे)

बीच के काल में कुछ साम्प्रदायिक लोग जाति-पांति की भावना खूब भड़काये और दुर्भाग्य है कि आज भी जाति-पांति के आधार पर साम्प्रदायिक भावनाएं बढ़ रही हैं लेकिन वह तो लोगों का अपना मिथ्या तथा धोखा देनेवाला स्वार्थ है। वह स्वार्थ उनका कल्याण नहीं करेगा किंतु उनका विनाश ही करेगा लेकिन वे बच्चों-सरीखे हैं जो साधारण लड्डू भी देखकर उसमें प्रलुब्ध हो जाते हैं और यह नहीं समझ पाते हैं कि उसमें विष है।

जहां तक फर्क डालने की प्रक्रिया है उससे देश का विनाश होगा। हमारे घर में दस लोग हों और हम सात लोगों से प्रेम करें और तीन से घृणा और वैर करें तो क्या घर संतुलित रहेगा। तब तो घर का विनाश ही होगा। सभी दसों से प्रेम करना जरूरी है और हम इतिहास उठाकर देखें कि महाभारत में कौरव और पांडव दोनों वेदव्यास की परम्परा के लोग हैं। उन्हीं के वंशज हैं और एक ही परिवार के लोग हैं लेकिन फूट पड़ने पर आपस में कटकर मर गये। उनमें कोई गैर नहीं था।

महाराज कृष्ण के परिवार में पूरा यादव वंश था। कोई उसमें बाहर का नहीं था लेकिन वैमनस्य के कारण आपस में कटकर मर गये। इस्लामी क्षेत्र में देखो, लोग एक दूसरे को काटते रहे और आज भी काट रहे हैं। पाकिस्तान में जो मस्जिदें फूंकी जाती हैं तो उनको फूंकनेवालों में हिन्दू नहीं होते हैं, मुसलमान ही उनको फूंकता है। एक फिरके की मस्जिद दूसरे फिरकेवाले फूंकते हैं। इसलिए यह जो वैमनस्य की आग है वह सदैव जलानेवाली है। इसलिए परस्पर में प्रेम से रहने की जरूरत है। इसी से हम तथा हमारा देश आगे बढ़ सकेंगे। पूरा भारत देश एक घर है और यहां के जितने सदस्य हैं, सब एक परिवार के लोग हैं और उनमें जब प्रेम की गंगा बहेगी तभी हमारा देश मंगलमय होगा। तभी राष्ट्रीय भावना जगेगी। दूसरे के सद्गुणों को हमें देखने की जरूरत है लेकिन हम सद्गुण न देखकर दुर्गुण देखना शुरू कर दिये हैं।

दूसरे वर्ग के विषय में कहते हैं कि उनमें "यह" त्रुटि है, "वह" त्रुटि है और आरोप लगाते हैं कि उनमें तो राष्ट्रीय भावना नहीं है लेकिन उनमें जो राष्ट्रीय भावना है उसका नाम नहीं लेते हैं। राष्ट्र के लिए उन्होंने जो कुर्बानियां दी उनका नाम नहीं लेते हैं और जरा-सी बात को लेकर काल्पनिक बातों में उलझते रहते हैं। यह अविश्वास बहुत गलत है। अविश्वास की बात करने से अविश्वास बढ़ेगा और घर टूटेगा। इसलिए विश्वास की बात करने की जरूरत है।

हमें क्षणिक लाभ के लिए, क्षणिक स्वार्थ के लिए बच्चा नहीं बनना चाहिए। जो लाभ क्षणिक और झूठा है वह अंत में जाकर बहुत घाटे के रूप में बंटाना पड़ेगा। उसको लेकर इंसान को घर-फूंक तमाशा नहीं करना चाहिए और अगर देश का इंसान नहीं चेता तो आज नहीं तो कल देश खूब ठोकर खा जायेगा और देश बहुत हद तक बरबाद हो जायेगा। हमारे देश का इंसान यदि यह विद्वेष की भावना नहीं मिटाया और परस्पर में प्रेम की भावना नहीं पनपाया तो देश को रक्तरंजित कर लेगा, देश को तोड़ लेगा और वह जब खूब रो लेगा तब पीछे इतिहास लिखा जायेगा कि जो आज का दुख है वह अपनी दुर्बुद्धि का ही फल है। इसलिए पहले ही जग जाना चाहिए।

पूरा भारत एक घर है और भारत में जितने लोग रह रहे हैं वे सभी भाई हैं। संदर्भ राष्ट्र का है इसलिए मैं ऐसा कहता हूं, नहीं तो जितने मानव हैं वे चाहे किसी भी देश में हों सभी भाई हैं। भारत में जितने भी लोग हैं

वे चाहे जिस मजहब के हों, चाहे जो उपासना करते हों, एक दूसरे के भाई हैं। सब एक जाति के हैं और सबमें प्रेम की जरूरत है।

भारत जब आजाद हुआ था, तब बड़ी सुन्दर हवा बही थी और आपस में मेल-मिलाप की भावना खूब बढ़ रही थी लेकिन दुर्भाग्य है कुछ वर्षों से वह भावना घटने लगी है और विरोध बढ़ने लगा है और तनाव इतना हो गया कि बहुत खराब हो गया लेकिन फिर से सोचने की जरूरत है। एक दूसरे से मिलो-बैठो, खाओ-पीओ। जिनसे जिनको रुचि हो शादी-विवाह भी करें, आपस में घुलें-मिलें और प्रेम की गंगा बहे। एक दिन ऐसा आयेगा कि हम और आप नहीं रहेंगे। न हिन्दू नाम रहेगा, न मुसलमान नाम रहेगा और न ईसाई नाम रहेगा। यह सब नाम घुलमिल कर कुछ और हो जायेगा। अनादिकाल का समय देखिये और पीछे के समय को देखिये। जितने नाम हैं सब कुछ ही समय से हैं। ''हिन्दू'' नाम कुछ हजार वर्षों से ही है। सबसे पहले ईरानियों ने ''हिन्दू'' शब्द कहा। सिन्ध नदी को ''हिन्द'' नदी और हमारे देश को वे ''हिन्द'' देश कहते थे और हम लोगों को ''हिन्दू'' कहते थे। उनसे हमें ''हिन्दू'' नाम मिला और वह प्रचलित हो गया।

वेद और वैदिक साहित्य में कहीं भी ''हिन्दू'' शब्द है ही नहीं। दोनों महाकाव्यों—'रामायण' और 'महाभारत' में भी ''हिन्दू'' शब्द है ही नहीं। इसी प्रकार इसलाम शब्द चौदह सौ वर्षों से ही है। ईसाइयत दो हजार वर्षों से है। बौद्ध ढाई हजार वषों से है और जैन उससे थोड़ा और पुराना है लेकिन यह सभी देश-काल में परिसीमित हैं। पहले क्या था? पहले कुछ और नाम था और दो-ढाई हजार वर्ष का समय क्या कोई बहुत बड़ा समय होता है? इस महाकाल के बीच में ढाई हजार वर्ष क्या अरबों युग का समय भी एक क्षण के समान है। और आज जितना है आगे चलकर घुल-मिल जायेगा और कुछ दूसरा हो जायेगा।

अगर आज से तीन-चार हजार वर्ष पूर्व का फिल्माया हुआ कोई फिल्म होता और आज उसको पर्दे पर आपको दिखाया जाता तो आप आश्चर्य करते क्योंकि आज का जितना पूजा-पाठ है उस समय नहीं था। राम की पूजा, कृष्ण की पूजा, गणेश की पूजा, शिव की पूजा, हनुमान की पूजा यह सब पूजा-पद्धतियां वैदिक नहीं हैं।

वैदिक काल में मरुत, वरुण, अग्नि, इनकी पूजा थी। लिंगी जिसे हम आप शिवलिंग कहते हैं, इसको आदिवासी पूजते थे। आर्यलोग उनको नकबैठा, काला-कलूटा, कर्कस वाणी बोलनेवाले और शिश्नदेवाः अर्थात शिश्न को देवता माननेवाले बड़े घृणित हैं ऐसा कहते थे क्योंकि आर्यलोग लिंगपूजा को बड़े घृणित दृष्टि से देखते थे। कहने का मतलब है कि समय के अनुसार सबकुछ कितना बदल जाता है। जो हमारी पूजा-पद्धति थी, उपासना थी, वह काफी छूट गयी।

इसीप्रकार आज जो कुछ है वह भी क्या तीन या चार हजार वर्षों के बाद ऐसे ही रहेगा? कतई नहीं रहेगा। लेकिन हमारी बुद्धि बहुत तुच्छ हो गयी है और हम एकदम बाल-बुद्धि हो गये हैं और मिथ्या स्वार्थ को लेकर मानवता में दरार बनाने की चेष्टा करते हैं। इसलिए हमारा निवेदन है और केवल हमारा ही नहीं किंतु पूरी मानवता का निवेदन है, पूरी मानवता का स्वर है कि राष्ट्र की दृष्टि से भारत के जितने भी सदस्य हैं सब भाई हैं इसलिए सब एक दूसरे से घुलें-मिलें, बैठें-उठें और खायें-पीयें। जिनसे जिनकी रुचि हो, जिनसे जिनका मन कहे शादी-विवाह भी करें और यह एक बात तो आप अवश्य मानें कि सम्बन्ध को न तोड़ें बल्कि सम्बन्ध में मधुरता बनाये रखें। तोड़ने से समाज टूटता है, परिवार टूटता है और राष्ट्र टूटता है।

जब भगवान श्रीकृष्ण एक सौ उन्नीस वर्ष के हो गये थे और परिवार के कलह से बहुत पीड़ित थे तब जाकर वे नारद जी से मिले थे और उनसे पूछा था—''महाराज! मैं बहुत दुखी हूं। मेरे बच्चे मेरी छाती पर मानो कोदो दलते हैं।''

नारदजी ने कहा था—''केशव! एक दुख ऊपर से आता है और एक दुख होता है जो भीतर से आता है। आपका जो दुख है वह भीतर से ही आया है क्योंकि आपने अपने बच्चों को जिंदगीभर लड़ना सिखाया और

लड़ाया है। अब बाहर की सब लड़ाइयां लगभग समाप्त हो गयीं हैं। महाभारत का युद्ध भी हुए लगभग छत्तीस वर्ष हो गये हैं लेकिन आपके बच्चों में लड़ने की आदत वैसे ही है। तब वे लड़े कहां, इसलिए आपस में ही लड़ते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि यह तो आपका ही किया हुआ है।" फिर महाराज कृष्ण को उन्होंने लम्बा उपदेश दिया।

जो परिवार के मालिक लोग हैं, जो साधु-महंत और राजनेता लोग हैं तथा जो भी अगुआ लोग हैं वे अगर अपने अनुगामियों को लड़ना सिखायेंगे, हिंसा सिखायेंगे, तोड़-फोड़ सिखायेंगे तो पहले तो वे दूसरों का कुछ बरबाद करेंगे फिर अपना भी बरबाद करके विनाश कर डालेंगे। यही प्रकृति का नियम है और इसको हजार भगवान भी मिलकर टाल नहीं सकते हैं। आप महाराज श्रीकृष्ण को परम भगवान मानते हैं लेकिन वे अपने परिवार के विनाश को नहीं टाल पाये। इसलिए इस घटना से सबक लेते हुए हमें उदार बनने की आवश्यकता है और इसी में राष्ट्रीय भावना है।

राष्ट्र कोई कंकड़-पत्थर नहीं है। यहां मनुष्य न हों तो फिर भारत किस काम का होगा। मनुष्यहीन होकर भारत, भारत नहीं रह जायेगा। इसलिए यह मनुष्य ही भारत हैं और उसमें एक-दो नहीं किंतु सभी मनुष्य भारत हैं और इसीलिए कबीर साहेब ने कहा—

सबहीं भूमि बनारसी, सब निर गंगा होय।
ज्ञानी आतम राम है, जा घट परगट होय॥

सभी भूमि मानो बनारस की भूमि है अर्थात अपना देश है, अपना निवास स्थान है और सब पानी गंगा है। जो पानी निर्मल हो वह गंगा है। पानी का शुद्धस्वरूप तो वैसे शुद्ध ही है। बाहर की गंदगी से मिलकर पानी खराब होता है, नहीं तो पानी का शुद्ध स्वरूप वही है।

कबीर साहेब ने यह बताया कि परमात्मा, मोक्ष, निर्वाण, कल्याण की जो हमें भूख है, वह बाहर नहीं अपने अन्दर में है। आदमी बाहर की जितनी चीजें पा जाये, संतुष्ट नहीं हो सकता। चाहे जितना बड़ा पद, चाहे जितना अधिक धन, चाहे जितना बड़ा जनसमूह हो, इनको पाकर जो हम अपने आप में गरमाहट का अनुभव करते हैं, यही हमारी कमजोरी है। इससे हम अपने को छलते हैं और अपने आपको धोखा देते हैं। जितना सम्बन्ध है सब क्षणिक है। उसमें जो गुदगुदाहट पैदा होती है वही व्यामोह है और संसार में जितना रमते हैं, भींगते हैं उतना ही अंत में निराश होते हैं। जितना सांसारिकता में भींगेगे, उतना निराशा हाथ लगेगी। कबीर साहेब ने कहा है—

मैं भंवरा तोहि बरजिया, बन बन बास न लेइ।
अटकेगा कहुं बेलि में, तड़फि तड़फि जिय देइ॥

साहेब कहते हैं कि ऐ भंवरा! मैं तो तुझको बारम्बार मना किया, रोका कि तू बन-बन सुगंधि की खातिर भटक मत। यदि तू बन-बन सुगंधि लेगा तो किसी विषैली लता में अटक जायेगा और तड़फ-तड़फकर अपनी जान देगा। उन्होंने और भी कहा है—

भंवर बिलम्बे बाग में, बहु फूलन की आस।
ऐसे जीव बिलम्बे विषय में, अंतहु चले निराश॥

भंवरे बाग में बहुत फूलों की सुगंधि में मोह गये और पशु आये और उनको चर लिये। फूल और पत्ते के साथ-साथ वे कीड़े भी चबा लिये गये और नष्ट हो गये। ऐसे ही जीव विषयों में बिलम गये, मोह गये और अंत में निराश होकर चले गये।

जवानी के बाद बुढ़ापा आयेगा और निराशा होगी। संयोग के बाद वियोग का आना निश्चित है। सुख के पश्चात दुख का आना निश्चित है। संगठन के बाद विघटन निश्चित है। सारे संयोगों का वियोग तो होगा ही। जो जन्म लिये हैं उनको मरना निश्चित है। साहेब ने कहा है—"जो चूने सो ढहि परे, जनमे सो मरि जाये।" जो चुना गया वह एक दिन ढह गया और जो जन्म लिया वह एक दिन मर गया। यही संसार है और ऐसे संसार में अपने को जो आसक्त करता है वह दुख पाता है।

मनुष्य को दुख प्रिय नहीं है। वह दुख से बिलकुल हट जाना, निवृत्त हो जाना चाहता है और यही उसका लक्ष्य है। अब इसी को दूसरे शब्दों में लोग कहते हैं— परमात्मा की प्राप्ति, भगवान की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष, परमात्मा, निर्वाण, भगवान, अल्ला, खुदा, कोई विविध चीज नहीं हैं और न

यह बाहर की चीजें हैं। अपने आप को शुद्ध करना, अपने चित्त को निर्मल करके आत्माभिमुख यानी अंतर्मुख होना ही परमात्मा की प्राप्ति है और इसकी आवश्यकता है और यह अवस्था जब आ जायेगी तब मानो परमात्मा मिल गया, भगवान मिल गया और मोक्ष मिल गया। कबीर साहेब ने तो एक ही लपेट में कहा है—

अल्लाह राम जियो तेरी नाईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँईं।
क्या मुंडी भुईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये।
खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये।
क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये।
ह्रदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये।
हिन्दू बरत एकादशी चौबिस, तीस रोजा मुसलमाना।
ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महीना आना।
जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, दुइमा किनहुँ न हेरा।
पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।
वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे।
सब घट एक एक कै लेखे, भय दूजा के मारे।
जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा।

लोग कहते हैं कि कबीर साहेब की सारी पंक्तियां गूढ़ हैं लेकिन गूढ़ नहीं हैं। गूढ़ वहां पड़ती हैं जहां वे योगियों को और ब्रह्मज्ञानियों को समझाते हैं और ऐसी चीजों को सामने रखते हैं जो दार्शनिक होती हैं। वहां उनकी पंक्तियां जरूर कुछ गूढ़ हो जाती हैं लेकिन सामान्य बातें गूढ़ नहीं हैं। आत्मज्ञान भी उनका गूढ़ नहीं है, बड़ा सरल है। कबीर साहेब रहस्यवादी नहीं किंतु स्पष्टवादी थे। वे तो खुलासा कहनेवाले थे। वे कहते हैं—जितने औरत और मर्द हैं सब तुम्हारे रूप हैं।

जो लोग कहते हैं कि कबीर जैसे हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र की एकता की बात कहे हैं वैसे स्त्री-पुरुष की एकता की बात नहीं कहे हैं। उन्होंने स्त्रियों की निंदा की है लेकिन बीजक न पढ़ने के कारण ही इस प्रकार का भ्रम होता है। बीजक में ऐसी पंक्तियां बारम्बार आती हैं—"जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा" जितने औरत और मर्द हैं सब तुम्हारे रूप हैं। अब इससे अधिक स्त्री और पुरुष की एकता की बात क्या हो सकती है। "कबीर पोंगरा अल्लह राम का सो गुरु पीर हमारा", साहेब कहते हैं कि अल्लाह और राम का जो पोंगरा है, वह हमारा गुरु-पीर है।

अल्लाह और राम यह दो शब्द आर्य और सामी परम्परा से साहेब लेते हैं। सामी परम्परा ईसाई, यहूदी और मुसलमानों की परम्परा है। "नूह" नाम के एक पुरुष थे। उनके तीन पुत्र थे—साम, हेम और येपेत। साम बड़े थे और साम के वंशज ही ईसाई, यहूदी और इसलामी माने जाते हैं। इसलिए उस परम्परा को सामी परम्परा कहा जाता है और उनके लक्ष्य को लेकर उन्होंने अल्लाह कहा।

आर्य परम्परा ब्राह्मण, श्रमण, सिद्ध, नाथ और संतों की परम्परा है और इस आर्य परम्परा में मुख्य ब्राह्मण परम्परा है। हिन्दू परम्परा से साहेब ने "राम' शब्द को लिया क्योंकि 'राम" शब्द साहेब के जमाने में बहुत प्रचलित था। जब कबीर साहेब अपनी वाणी बोल रहे थे उसके एक हजार वर्ष पूर्व से ही "हरि" शब्द का प्रचलन हो गया था। और उनके पांच सौ वर्ष पूर्व से ही "राम" शब्द का प्रचलन हो गया था। इसके पहले "राम" और "हरि" दोनों शब्दों का प्रचलन आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं था।

ऐसे "राम" नाम के व्यक्ति कभी-कभी होते हैं लेकिन "राम परमात्मा हैं, आत्मा हैं और राम नाम जपना चाहिए" यह वेद और पूरे वैदिक साहित्य में कहीं नहीं है।

"राम" शब्द का प्रचलन राम की कहानी के लिखने के बाद हुआ और राम आत्मा और परमात्मा के रूप में दसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ जिसको आज 1000 वर्ष हो रहे हैं। "हरि" शब्द का अर्थ वेदों में घोड़ा है और इन्द्र भी है। वालमीकि रामायण में हरि का अर्थ "वानर" है लेकिन "हरि" कोई परमात्मा और आत्मा नहीं। पारसियों के धर्म में ईश्वर का नाम है "अहुरमज्द" और यहां के संस्कृत के पंडितों ने उनसे जब सम्पर्क किया तो उनके "अहुरमज्द" को वे "हरिमज्द" नहीं कहे किंतु

''हरिमेधस'' कहे क्योंकि भिन्न भाषावाले उच्चारण बदल लेते हैं।

''अहुरमज्द'' को हमारे पंडितों ने ''हरिमेधस'' कहा और बाद में चलकर ''मेधस'' उड़ गया और ''हरि'' रह गया। गुप्तकाल में ''हरि'' शब्द खूब आत्मा-परमात्मापरक हो गया अर्थात आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व और कबीर साहेब के जमाने से एक हजार वर्ष पूर्व ''हरि'' शब्द आत्मा-परमात्मापरक हो गया। इसलिए कबीर साहेब के जमाने में हरि और राम शब्द की गूंज थी। इसलिए अपनी वाणी में उन्होंने ''हरि'' और ''राम'' शब्दों को लिया।

साहेब कहते हैं कि राम का जो पोंगरा है, नूर है, प्रकाश है, वह चाहे राम हो, कृष्ण हो, महादेव हो, शिव हो या हिन्दू लोग जितने महापुरुषों को मानते हैं सब राम के पोंगरा हैं। ''राम'' शब्द का अर्थ यहां ईश्वर है। साहेब कहते हैं कि ईश्वर का जो पोंगरा है, नूर है, प्रकाश है वही हमारा गुरु है और जो अल्लाह है, उसका पोंगरा चाहे मोहम्मद हो, ईसा हो, मूसा हो, दाउद हो या कोई भी हो वे सब हमारे पीर हैं—''सो गुरु पीर हमारा'' इतना व्यापक दृष्टिकोण लेकर सामी और आर्य परम्परा के महान पुरुषों को एक ही पंक्ति में अपना गुरु-पीर कहकर समन्वय करनेवाले पुरुष कबीर के विचार कितने अद्भुत हैं।

कबीर साहेब खण्डन भी करते थे क्योंकि गलतियों का खण्डन किये बिना गलतियां निकलती नहीं हैं। फिर भी साहेब केवल खण्डन ही नहीं करते हैं, किंतु मण्डन भी करते हैं। उनका हृदय इतना कोमल था कि सबको आदर देते थे। उनका एक शब्द है—

संतो मते मातु जन रंगी।
पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सत्संगी।
अर्धे उर्धे भाठी रोपिनि, लेत कसारस गारी।
मूंदे मदन काटि कर्म कस्मल, सन्तति चुवत अगारी।
गोरख दत्त बशिष्ठ व्यास कपि, नारद शुक मुनि जोरी।
बैठे सभा शम्भु सनकादिक, तहाँ फिरै अधर कटोरी।
अम्बरीष और याज्ञ जनक जड़, शेष सहस मुख फाना।
कहाँ लौं गनौं अनन्त कोटि लौं, अमहल महल दिवाना।
ध्रुव प्रहलाद विभीषण माते, माती शेबरी नारी।
निर्गुण ब्रह्म माते वृन्दावन, अजहूँ लागु खुमारी।
सुर नर मुनि यति पीर औलिया, जिन रे पिया तिन जाना।
कहैं कबीर गूंगे की शक्कर, क्यों करि करे बखाना।

इस पद में देखिये कि कितने नाम वे लेते हैं। गोरख से शुरू करते हैं तो गोरख, दत्त-दत्तात्रेय, वसिष्ठ, व्यास, आदि कितने नाम लेते हैं और कहते हैं कि यह सब अपने-अपने ढंग से मस्त थे और गूंगा गुड़ खा ले तो कैसे बताये कि उसकी मिठास कैसी है। सब अपने-अपने में मस्त थे। महापुरुष जितने हुए हैं, साधक जिस मत के हुए हों, चाहे वे भक्तिमार्ग लेकर चले हों, चाहे ज्ञानमार्ग लेकर चले हों, चाहे कोई मार्ग लेकर चलें हों, उनमें जो विषय-विरक्ति थी, कर्मप्रपंचों के प्रति जो उदासीनता थी और जो आत्मानुरक्ति थी वह अद्भुत थी और किसी के जीवन में अगर अनुराग है तो निश्चित है कि उसका जीवन पवित्र होता है। आलम्बन चाहे कुछ भी हो। जहां पर वे एक-एक का नाम लेकर खंडन करनेवाले हैं वहां पर वे एक ही शब्द में उन सबकी मानो वन्दना करते हैं। इसलिए कबीर साहेब संत हृदय के पुरुष थे। कबीर साहेब योगी थे, संत थे, समाज सुधारक थे, क्रांतिकारी थे, कवि थे और कम्युनिस्टों के ख्याल में महाकम्युनिस्टी भी थे। उनका इतने विविधरूप हैं कि एक ही रूप की व्याख्या की जाये तो बहुत हो जाता है लेकिन उनका संतरूप सर्वग्राह्य है और उसके साथ सब रूप उसमें आ गये हैं।

कबीर साहेब कहते हैं कि आप को जो पाना है, वह पाने की वस्तु नहीं है किंतु वह तो नित्यप्राप्त ही है। ''परमात्मा के दर्शन होते हैं'' यह वाक्य हमें छलता है क्योंकि दर्शन तो दृश्य के होते हैं। उपनिषद् के ऋषि इसको समझाते हुए कहते हैं—

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जिसको आंखें नहीं देखतीं किंतु जिसकी सत्ता से आंखें देखती हैं, उसको तू ब्रह्म जान। आंखों से देखकर

जिसकी तुम उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है। ऋषि इसीप्रकार आगे भी कहते हैं—

यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोतमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥
यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

ऋषि कहते हैं कि जिसको कान से नहीं सुना जा सकता है बल्कि जिसकी सत्ता से कान सुनता है उसे तुम ब्रह्म जानो। कान से सुनकर जिसकी उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है। जो प्राणों को सत्ता देता है उसे तू ब्रह्म जान। प्राणों से जिसकी उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है। मन से जिसको मनन नहीं किया जा सकता है किंतु जिसकी सत्ता से मन चलता है उसको तू ब्रह्म जान। मन से मनन करके तू जिसकी उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है। इस प्रकार आंख, नाक, कान, मन सभी इन्द्रियों से आधारित उपासना का खण्डन करके ऋषि बताते हैं कि जो दृश्य है, श्राव्य है, जिसका स्पर्श हो, जो इन्द्रियों में आये वह ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म तो वह है जो द्रष्टा है, साक्षी है, बोद्धा है और मन्ता है। मतलब है कि यह जीव, यह आत्मा ही वह तत्त्व है जिसको हम खोजते हैं। कबीर साहेब ने इसको बारम्बार कहा है। उन्होंने कहा है—

पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी।
आतमज्ञान बिना नर भटकै, कोइ मथुरा कोइ काशी॥

और—

कस्तूरी कुण्डलि बसे, मृग ढूढ़े बन माहिं।
तैसे घटि घटि राम है, दुनिया जानत नाहिं॥

इसलिए परमात्मा के दर्शन का मतलब होता है आत्म-साक्षात्कार। जैसे आपके सामने कोई भोजन परोसे और कहे कि देखो सब्जी में नमक कैसा है तो वह आंख से देखने के लिए थोड़े कहता है। सब्जी को जीभ पर रखो तब नमक का पता लगेगा। वह तो जीभ देखती है कि नमक कैसा है। रस को जीभ ही देखती है। इसी प्रकार परमात्मा के भी दर्शन का मतलब है आत्म-साक्षात्कार। आत्मसाक्षात्कार और परमात्म साक्षात्कार एक ही बात है।

जीवात्मा, प्रेतात्मा, दुष्टात्मा, पुण्यात्मा, शुद्धात्मा और महात्मा तथा परमात्मा इनमें आत्मा ही मूल है और सारे शब्द विशेषण हैं। जीवात्मा का अर्थ है देहधारी आत्मा। प्रेतात्मा का मतलब है वह आत्मा जो देह छोड़कर चला गया, दुष्टात्मा का मतलब है गलत आदमी और शुद्धात्मा का मतलब है पवित्र आदमी। और जो अपने को खूब ऊपर उठा लिया वह महात्मा कहा जाता है। जो गुणों को पूर्णरूप से जीत लिया, विकारों को जीत लिया और आत्मलीन हो गया वह परमात्मा हो गया। तो यह आत्मा ही परमात्मा हो जाता है क्योंकि इसमें ज्ञान-क्रिया की शक्ति है।

लोग जिसको परमात्मा कहते हैं वह उधारी का सौदा है और बेकार का है। लोग मानते हैं कि परमात्मा बाहर है और वह मिलेगा लेकिन जो बाहर है वह अगर मिलेगा तो मिलकर छूटेगा जरूर और ऐसे परमात्मा से हमारा नित्य कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा मिलना नहीं है। परमात्मा तो पहले से ही प्राप्त है। परमात्मा हमसे अलग हो नहीं सकता। एक ही चीज है जो हमसे अलग नहीं हो सकती और वह है परमात्मा और उसी को हम भूले रहते हैं। और अलग होनेवाली जो चीज है उसको छाती-पेटे लगाये रखने का हठ करते हैं। देह तक तो अलग हो ही जायेगी फिर और की दशा क्या कही जाये। इसलिए जो कुछ हमें दिखाई देता है उसका मोह छोड़कर जब हम अंतर्मुख होंगे तब परमात्मा के दर्शन होंगे यानी मन से आत्मानुभूति होगी।

मन-चित्त एक पुल है जो द्रष्टा और दृश्य को जोड़ता है। द्रष्टा आत्मा है और दृश्य यह भौतिक जगत है। इन दोनों को जोड़नेवाला चित्त ही है। जब चित्त टूट जायेगा तब आत्मा चेतन प्रकृति से लौटकर अपने आप में स्थित हो जायेगा। आत्म-साक्षात्कार ही परमात्म साक्षात्कार है। इसलिए दर्शन की जो बात है वह

भावुकता है। प्रथम साधना में ऐसा होता है कि कोई किसी इष्ट को मानता है तो उसको वह दिखाई देता है। जो लड़का किसी लड़की में ज्यादा मोहित हो जाता है उसको लड़की हरदम दिखाई देती है और उस लड़की को वह लड़का दिखाई देता है।

क्रोधी आदमी को शत्रु सदैव दिखाई देता है। अत्यन्त लोभी को हरदम पैसे ही दिखाई पड़ता है तो कहीं कोई किसी को इष्ट मान लिया तो वही उसको दिखाई देता है तो वह समझता है कि दर्शन हो रहे हैं। कबीर साहेब ने इसपर व्यंग्य किया है और कहा है—

जो मतवारे राम के, मगन होहिं मन माहिं।
ज्यों दर्पण की सुन्दरी, गहै न आवे बांहि॥

जो साधक राम को अपने से अलग मानकर उसके लिए मतवाले हैं उनकी दशा तो वैसे ही है जैसे दर्पण में सुन्दरी युवती की परिछाईं कोई देखे और उसे पकड़ना चाहे लेकिन उसके पकड़ने में वह न आये तो वह उसके बिना परेशान रहे। इसी प्रकार हमारे मन में जो प्रतिबिम्बित होते हैं वे हमारी धारणाएं हैं। इसका तो मुझे स्वयं का अनुभव है।

मैं अपने पूर्वाश्रम में शिव, कृष्ण, विष्णु और राम इन चार महापुरुषों की उपासना करता था और शिव तो मेरे परम उपास्य थे। जब मैं अपनी आंखें बन्द करता था तो मालूम होता था कि शिव मेरे चारों तरफ बैठे हैं। सपने में मैं राम से वार्तालाप करता था और कहता था कि मुझे भगवान के दर्शन हुए।

ऐसे ही दर्शन होता है। यह एक भावना है और अगर किसी महापुरुष को कोई इष्ट मानकर प्रेम रखता है तो आरम्भिक साधना में अच्छा है लेकिन अंत में यह भी जंजाल है। चाहे कबीर साहेब हों, चाहे राम हों, चाहे कृष्ण हों, चाहे कोई भी हो। यह सब महापुरुष हैं। यह जन्में हैं और मिट गये हैं। उनका काल्पनिक चित्र हमारे सामने है। उन्हें थोड़ा ध्यान का विषय बना लें तो यह अपने मन को रोकने के लिए अच्छा ही है लेकिन स्थिति तो आत्मा में ही होगी न कि उस चित्र में।

मैं कलकत्ता में था तो एक सज्जन आये और मुझको लेकर अपने घर चले। रास्ते में उन्होंने कहा कि साहेब! क्या आप कबीर साहेब के दर्शन किये हैं?

मैंने कहा कि नहीं भाई, मैंने तो नहीं किया। तब वे कहे—"मुझे तो कबीर साहेब के दर्शन हुए हैं।"

मैंने कहा—"भाई, मैं तो आपही का दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गया क्योंकि जब आप कबीर साहेब को देख लिये तो मैं आपको देखकर मानो वहां तक पहुंच गया।"

कबीर साहेब के दर्शन करनेवाले बहुत मिलते हैं। जो कबीर साहेब इस प्रकार के दर्शन की बात को कभी नहीं माननेवाले थे उन्हीं के अनुयायी लोग कहते हैं कि हमें उनके दर्शन हुए हैं। यह बहुत बड़ी भावुकता है।

एक जज थे। यहीं कबीर आश्रम में वे मुझसे मिलने आये थे और वे बहुत प्रतिष्ठित जज थे। उन्होंने कहा कि कबीर साहेब तो आपको ऐसे दिखाई दे जायेंगे जैसे हम लोग आमने-सामने बैठे हैं।

मैंने कहा कि मुझे तो इसपर थोड़ा भी विश्वास नहीं है। जज होने से किसी को ज्ञान हो जाये, वकील हो जाने से, डॉक्टर हो जाने से, इंजीनियर हो जाने से, प्रोफेसर हो जाने से किसी को वस्तुतथ्य का बोध हो जाये ऐसी बात नहीं है। चमत्कार में जितना गंवई-गंवार लोग फंसे हैं उतना ही शहरों के पढ़े-लिखे और उच्च पदों पर काम करने वाले लोग और विद्वान लोग भी फंसे हैं। अच्छे-अच्छे इंजीनियर, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर मिलते हैं जो गुल्ली-ताबीज पहने रहते हैं और टोना-टोटका कराते-धराते हैं, ग्रह-लग्न और मुहूर्त के चक्कर में पड़े रहते हैं। वे लोग हाथ भी दिखाते हैं और ना-मालूम कितने-कितने पाखण्ड में वे लोग पड़े रहते हैं। सत्य का बोध बिल्कुल अलग चीज है। सत्य का बोध अनपढ़ को भी हो सकता है और पढ़े-लिखे को भी हो सकता है।

कबीर साहेब के दर्शन होने का मतलब है कि उनका ज्ञान धारण करना। ऐसे जितने महापुरुष हैं उनके दर्शन का मतलब है उनके विचारों को धारण करना।

विचार किया जा रहा था कि परमात्मा के दर्शन आत्मसाक्षात्कार है और वह समाधि में होता है।

जब चित्त लीन होता है, शांत हो जाता है तब वह होता है।

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" योगदर्शन में कहा गया है। फिर आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो गया और यही अंतिम गति है। यही बात कबीर साहेब ने भी कहा है। मोक्ष के लिए पंडितों पर उन्होंने व्यंग्य किया है और कहा है कि ऐ पंडितो! बताओ तो कि मुक्ति किधर रहती है। वह पूरब रहती है कि पश्चिम में रहती है? "उत्तर कि दक्षिण पूरब कि पश्चिम, स्वर्ग पताल कि माहीं। बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूं, नरक जात धौं काहीं।" और इसी पद के अंत में वे कहते हैं कि "जहां का पद तहां समाई" यानी लोक-लोकान्तर में मोक्ष नहीं है किंतु हर वस्तु अपने स्वरूप में ही स्थित होती है। आत्मा अपने स्वरूप में ही स्थित हो जाये यही मोक्ष है। यही मोक्षलाभ है और यही परमात्मलाभ है और यही बात वेदों और उपनिषदों में भी है।

वेदों में कर्मकाण्ड ही ज्यादा है अध्यात्म बहुत कम है। हां, उपनिषदों में अध्यात्मज्ञान की बातें अधिक हैं लेकिन वेदों में जहां अध्यात्म ज्ञान की बातें हैं वहां वे हीरे-मोती के समान उज्ज्वल हैं। ऐसा ही एक मंत्र है। वेद के ऋषि कहते हैं—

परिद्यावा पृथिवी सद्यऽयित्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्॥

द्यावा, पृथिवी, लोक और दिशा—इन शब्दों में ऋषि "परि" विशेषण लगाकर कहते हैं कि यह सारा संसार ऋत के तन्तु से परिपूर्ण हैं लेकिन इस जड़ को जो भेद लेता है और चेतन में पहुंच जाता है, आत्मा में पहुंच जाता है वह—"तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्" उसको वह देख लेता है, वही हो जाता है और वही है ही। यह कथन तीन उड़ानों में है। पहली उड़ान है—"तदपश्यत" उसको देख लेता है। जब जड़ को भेद दिया तो जड़ से पार पहुंचकर साधक आत्मलीन हो जाता है। आत्मा का साक्षात्कार उसको हो जाता है। वह आत्मा को देख लेता है। लेकिन देख लेना पूर्णता नहीं है क्योंकि देखना अन्य का होता है। अपने से परे को ही देखा जा सकता है। इसलिए ऋषि दूसरी उड़ान भरता है और कहता है—"तदभवत" वही हो जाता है लेकिन होना भी नकली है। होना भी पूर्णता नहीं है।

अंत में ऋषि तीसरी और अंतिम उड़ान में कहता है "तदासीत" वह वही है ही और ऋषि यही असली बात कहते हैं। वह आत्मा या परमात्मा को देख लेता है। "आत्मा" और "परमात्मा" जो शब्द आपको प्रिय हो, आप कह सकते हैं। आप यह भी कह सकते हैं कि वह अल्लाह को देख लेता है, राम को देख लेता है। जिसे आप कहना चाहें कह लें कि उसको देख लेता है।

तब आगे ऋषि कहता है कि वही हो जाता है। फिर अंत में ऋषि कहता है कि वह वही है ही। इसलिए वेदों में, शास्त्रों में और उपनिषदों में भी यह कहा गया है कि वह आपकी आत्मा है और वह आपका स्वरूप है। कबीर साहेब की वाणी में शुरू से आखीर तक यह बातें ओतप्रोत हैं। वे कहते हैं—"दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।"

कबीर साहेब के जितने मुद्दे हैं वे ऐसे सार्वजनिक और ऐसे सार्वभौमिक हैं कि उनको रहस्य नहीं कहा जा सकता। उनका तो सीधा-सादा, सहज ज्ञान आत्मज्ञान है और इस ज्ञान में स्थित हो जाना ही सहज समाधि है। आत्मा-परमात्मा को कहीं खोजना नहीं है क्योंकि वह तो नित्य प्राप्त है। मनुष्य मनुष्य है इसके अतिरिक्त उसकी कोई जाति-बिरादरी नहीं है और उसमें कोई विभेद भी नहीं है। दूसरे के साथ प्रेम का व्यवहार करना धर्म है। यही सब उनकी वाणियों में व्याप्त है और यह रहस्य नहीं किंतु बिलकुल स्पष्ट है।

इसलिए कबीर साहेब के दृष्टिकोण से मानव एक जाति है। मानवता एक धर्म है। मानवता का अर्थ है जो दूसरे से अपने लिए चाहें उसे ही दूसरे के लिए करें और अपनी तरफ लौटें क्योंकि अपनी तरफ लौट आना ही जीवन की चरितार्थता है। अगर हम दुनिया के मोह-क्षोभ में पड़े रहेंगे तो हम भटकते रहेंगे और दुख पाते रहेंगे। अंतिम शांति, परमानन्द, परम कल्याण आत्मज्ञान और आत्मलीनता में ही है और बहुत सारा ऐश्वर्य बेकार है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अब अपनी बात को समाप्त करता हूं। ❑